पद्माकर-पराग

सम्पादक
प्रोफेसर दुर्गाप्रसाद गुप्ता, एम० ए०

प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स
आगरा, ग्वालियर, जैपुर, कानपुर

सम्पादक

प्रोफेसर दुर्गाप्रसाद गुप्ता, एम० ए०

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड सन्स

आगरा बाँके-विलास | कानपुर ४०/७८ परेड | ग्वालियर पाटनकर बाज़ार | जयपुर चौड़ा रास्ता

दो शब्द

हिन्दी पाठक समय-समय पर बहुत से कवियों के सङ्कलन पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त करते आ रहे हैं। कविवर पद्माकर—जिनसे सभी भली भाँति परिचित हैं—हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में से थे। अतः ऐसे प्रगल्भ कवि का सङ्कलन छात्रों के सम्मुख क्यों न उपस्थित किया जाय। इसी विचारधारा को लेकर 'पद्माकर-पराग' नामक सङ्कलन तैयार किया हैं। प्रस्तुत सङ्कलन में प्रत्येक दृष्टिकोण को सामने रखकर इस बात का भी ध्यान रखा है कि विद्यार्थी-वर्ग के ज्ञान-भण्डार को प्रेरणा मिले। प्रस्तुत सङ्कलन 'पद्माकर-पराग' में:—

१—गङ्गा लहरी। २—प्रबोध-पचासा। ३—षड्ऋतु-वर्णन। ४—रस-वर्णन। ५—हिम्मत बहादुर यशोगान। ६—विविध वस्तु-वर्णन को सङ्कलित किया है।

सङ्कलन का प्रत्येक विषय काव्य की दृष्टि से अपनी विशेषता रखता है। गंगा लहरी में गंगा का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक और भावसंगत है। प्रबोध-पचासा सुरुचि, लालित्य तथा ज्ञानपूर्ण है। अलङ्कार तथा भावों का समावेश बड़े ही स्वच्छन्द रूप से किया गया है। षड्ऋतु-वर्णन में 'सेनापति' की तरह छः ऋतुओं के विषय में कवि ने कतिपय उत्तम कवित्त लिखे हैं। रस-वर्णन में ९ रसों (नव रस) का वर्णन बहुत ही हृदयाकर्षक, स्वाभाविक अतिशयोक्ति तथा वक्रोक्ति पूर्ण है और हिम्मत बहादुर यशोगान

में कवि ने हिम्मतसिंह के विषय में सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। पश्चात् विविध वस्तु-वर्णन में राजा प्रतापसिंह तथा कतिपय पशु-पक्षियों के विषय में कवि ने अपनी प्रतिभा का आभास दिया है।

इस प्रकार 'पद्माकर-पराग' की चतुर्दिक सुगन्ध लोक-व्यापिनी है। सरस हृदय पाठक आनन्दविभोर हो उठेंगे। इसके विषय में इतना कहना युक्तिसंगत ही होगा कि प्रस्तुत 'पराग' जिन छात्रों के लिए तैयार किया गया है उनकी साहित्यिक अभिरुचि को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाने में यह संग्रह अवश्य ही उपादेय और सहायक बनेगा।

अन्त में कठिन शब्दों के अर्थों के उल्लेख के साथ-साथ विशेष टिप्पणी में आवश्यक अर्थों की ओर संकेत भी कर दिया है। आशा है यह सङ्कलन छात्रों के हृदय में रीतिकाल के अन्तिम प्रतिनिधि कवि पद्माकर की कविता के प्रति प्रेम उत्पन्न करने में सहायक होगा। सेन्ट जान्स कालेज आगरा के प्रोफेसर कुलदीप जी ने इस पुस्तक का संशोधन और परिवर्धन किया है जिसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

—सम्पादक
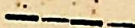
———

विषय-सूची

पद्माकर का समय

कविवर पद्माकर रीतिकाल के अन्तिम प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। रीतिकाल में कवि कविता-कामिनी पर आसक्त होकर उसका भिन्न-भिन्न प्रकार से रूप-वर्णन करते थे। भक्तिकाल में कृष्ण लीला के गाये जाने वाले गीत अब प्रणय-लीला के गीतों में परिवर्तित हो चुके थे। श्री कृष्ण अब गीता का दर्शन बताने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं बल्कि रसिक कन्हैया हो गए थे। कविगण अपना उच्चादर्श भूलकर शृंगार की तड़क-भड़क में ही व्यस्त रहते थे। औरङ्गजेब के बाद के शासक जितने अधिक अकर्मण्य होते गये, लखनऊ के नवाब जितने विलास में डूबते गये उतने ही हिन्दी-कवि भी यौवन की मस्ती में झूमते चले गये। सभी रसिया और छैला बनने की इच्छा में राजाओं और नवाबों के द्वार चूमते रहे। भोगविलास के अतिरिक्त रजवाड़ों में कुछ रह ही नहीं गया। कवियों में चाटुकारी और जी हुजूरी बढ़ती चली गई।

हर जगह नायिका भेद की बारीकियाँ जाँची जाने लगीं। महाराजाओं की भाँति छोटे-छोटे राजा और जमींदार भी नाच-रंग में झूमते रहते थे। महफिलों में प्रणय-लीला थिरक उठी और कवियों की वाणी मादक राग अलापने लगी। विषय में नायिका, उद्देश्य में नायिका, भाव में नायिका, उपमा में नायिका, समस्या-पूर्ति में नायिका। जहाँ देखो वहाँ नायिका-ही-नायिका की धूम

थी। नायिका की कोमलता, कटि की लचक, चाल की थिरक, आँखों की मस्ती में ही कवि और उनके आश्रय-दाता लीन रहते। उन्हें देश और समाज का कोई ध्यान न था।

पद्माकर जी भी इसी काल में रहकर इसी हवा में वहने लगे। वे समाज में चली आने वाली पुरानी रीति पर ही चल पड़े। उनमें वह आत्मिक वल नहीं था कि जिससे समाज को अपने पीछे ले चलें। वे अपनी परंपरा से आगे एक पग भी न वढ़े। वे जिस दरवार में जाते उसी की प्रशंसा के गीत गाने लगते। लोक-रुचि के विरुद्ध एक शब्द भी अलग से कहने का ध्यान उन्हें शायद कभी आया ही नहीं। अन्य शृंगारी कवियों की भाँति वे भी अपने आश्रय-दाता की प्रशंसा कर नायिका-भेद में रस-मग्न रहने लगे।

श्री पद्माकर भट्ट का परिचय

भट्टजी का जन्म सं० १८१० में सागर में हुआ था और जाति मथुरास्थ शाखा के तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज पहले वाँदा में रहते थे। इसलिए ये वाँदा वाले भी कहे जाते थे। ८० वर्ष तक जीवित रहे; परन्तु मृत्यु-काल तक इन्होंने अपना समस्त जीवन देशाटन में ही विताया। भाग्य से सं० १८६० में कानपुर जैसे पवित्र स्थान में गंगा-तट पर इनका देहावसान हुआ।

श्री 'पद्माकर' जी के पिता मोहनलाल भट्ट मध्य प्रदेश के नगर सागर में रहा करते थे। कविता के प्रति प्रेम उनके पूर्वजों को भी वहुत था। आचार्य केशवदास के समय में बुन्देलखण्ड में व्रजभाषा काव्य का प्रचलन हो गया था और इसी से प्रेरणा पाकर इनसे

दो पीढ़ी पूर्व जनार्दन जी से काव्य-रचना का अभ्यास आरम्भ हो गया था। जनार्दन के पुत्र मोहनलाल भट्ट भी कविता करने लगे थे। परन्तु यह मन्त्र-सिद्धि के सम्वन्ध में अधिक तीव्र बुद्धि थे। वंश-परम्परा का प्रभाव पद्माकर पर भी पड़ा और इसी प्रकार इस वर्तमान युग तक में भी उनके वंशज थोड़ी-वहुत कविता वरावर करते हैं और अपने को 'कवीश्वर' लिखते हैं। इसी कारण पद्माकर जी के वंश का नाम 'कवीश्वरवंश' पड़ गया।

श्री पद्माकर ने अपने पिता जी से जिस प्रकार कविता का अभ्यास किया उसी प्रकार मन्त्रसिद्धि का भी। कहते हैं कि तत्कालीन सागर नरेश रघुनाथ राव अप्पा साहव की प्रशंसा में पद्माकर ने जो 'संपति कुवेर की' प्रतीक वाला कवित्त सुनाया था उस पर मुग्ध होकर एक लाख मुद्रायें दी थीं। इसी से वह कवित्त उनके वंशजों में लखिया के नाम से प्रसिद्ध है। इससे विदित होता है कि अप्पा साहव के यहाँ उनका काफी सम्मान था। कुछ दिनों वाद अप्पा साहव से अनवन हो गई। इसलिए पद्माकर अपने पुराने स्थान बाँदा चले गये। और वहीं मन्त्र-सिद्धि का कार्य आरम्भ कर दिया। वाद को महाराज जैतपुर तथा सुगत निवासी नोने अर्जुनसिंह इनके शिष्य वन गये। अर्जुनसिंह ने तो लक्षचंडी के अनुष्ठान द्वारा अपनी तलवार सिद्ध कराई और पद्माकर को अपने कुल का गुरु बना दिया। इसके वाद पद्माकर दतिया के महाराज के दरवार में पहुँचे और एक कवित्त पर खुश होकर महाराज ने उन्हें एक जागीर दी।

दतिया से होकर ये रजधान के गुसाईं हिम्मत वहादुरजी के यहाँ पहुँचे। उनकी प्रशंसा में इन्होंने हिम्मत वहादुर विरुदावली नामक ग्रन्थ का निर्माण किया जो वीर रस का ग्रन्थ है। वड़ी ही

ओजस्विनी तथा फड़कती हुई भाषा में इस ग्रन्थ की रचना हुई है। कहा जाता है कि १८५५ तक पद्माकर रजधान ही ठहरे। वहाँ से पद्माकर सितारे आये और महाराजा रघुनाथ राव राघोवा ने इनका बहुत ही आदर किया। वहाँ से इन्हें १० गाँव, एक हाथी और एक लाख रुपया पुरस्कार में मिला। १८५६ में सागर के रघुनाथ राव ने इन्हें फिर अपने यहाँ बुलाया। वहाँ उन दिनों में कोई लड़ाई छिड़ी हुई थी। पद्माकर ने रघुनाथ राव की प्रशंसा में एक कवित्त बनाकर सुनाया था।

दाहन तैं दूनी तेज तिगुनी त्रिसूल तैं,
चिल्लिन तैं चौगुनी चलाँक चक्र-चाली तैं।
कहै 'पद्माकर' महीप रघुनाथ राव,
ऐसौ समसेर सेर, सत्रुन पै घाली तैं।
पंजगुनी पव्व तै पचीसगुनो पावक तैं,
प्रकट पचासगुनी प्रलय-प्रनाली तैं।
सतगुनो सेस तैं सहस्र गुनी सापन तैं,
लाखगुनी लूक तैं करोरिगुनी काली तैं॥

पद्माकर जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के आश्रय में भी कुछ दिन तक रहे। जयपुर में ही इनको अधिक आनन्द-भोग करने का सुअवसर मिला था, इसलिए ये वहीं रहे। महाराज प्रतापसिंह के पुत्र महाराज जगतसिंह ने इनका काफी सम्मान किया। महाराज जगतसिंह को कविता का भी शौक था। एक दिन उनके गुरु एक समस्या की पूर्ति में कई दिन से उलझे हुए थे। पद्माकर ने किसी प्रकार समस्या का पता लगाया और उसकी पूर्ति की। पद्माकर की प्रतिभा देखकर महाराज ने इन्हें राजकवि

वनाया। यहाँ ये वहुत समय तक रहे और उन्हीं के नाम पर अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "जगद्विनोद" वनाया। पद्माकर वड़े राजसी ठाठ में रहते थे। ये वड़े लश्कर के साथ यात्रा करने निकलते थे। एक वार जयपुर से वाँदा जाते समय इनके लश्कर को देख कर वूँदी वाले समझे थे कि कोई राजा आक्रमण करने आ रहा है। उस समय पद्माकर ने कहा—

'पद्माकर डराउ मत कोऊ भैया, हम कविराज हैं प्रताप महाराज के।

श्री पद्माकर जयपुर से उदयपुर भी गये। उन दिनों वहाँ महाराज भीमसिंह राज करते थे। उदयपुर में चैत्र शुक्ला चतुर्थी को 'गनगौर' का भारी मेला लगता है। ये इसी अवसर पर वहाँ गये थे।

इसके अनन्तर ये तत्कालीन ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के यहाँ गए। ग्वालियर में ही उन्होंने दौलतराव के एक मुसाहिव 'उदोजी' के कहने से संस्कृत के 'हितोपदेश' का गद्यपद्यात्मक भाषानुवाद भी किया था। इधर रतनसिंह चरखारी की गद्दी पर वैठे। अपनी पुरानी प्रकृति के अनुसार पद्माकर जी उनसे मिलने के लिए चरखारी गए, किन्तु उन्होंने इनसे भेंट न की। इस अपमान से इनके चित्त को वड़ी आत्मग्लानि हुई और फिर कभी उनके यहाँ नहीं गए। उन्होंने महाराज के पास उसी समय एक कवित्त लिख कर भेजा था जिसकी अन्तिम पंक्ति है—"तुम महाराज हौ तो हम कविराज हैं।" इससे रतनसिंह वड़े लज्जित हुए। वहाँ से घर को लौट कर इन्होंने कानपुर की तरफ प्रस्थान किया। कहा जाता है कि पद्माकर ने रास्ते में ही गंगा की स्तुति में 'गंगा लहरी' की रचना कर डाली। गंगा लहरी के अन्तिम

पद्यों को पढ़ने से रोगमुक्ति की चर्चा भी कविता में है। कानपुर में उनका कुष्ठ रोग नष्ट हो गया परन्तु पूर्णतया स्वस्थ न हो सके। इसके बाद ये केवल ६ मास तक और जीवित रहे, अन्त में वहीं संवत् १८९० में स्वर्गवासी हुए।

पद्माकर की रचना

रीतिकाल में प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रथा नहीं के बराबर थी। वे विशेषतया मुक्तक काव्य ही निर्माण किया करते थे। यह इसलिए नहीं कि उन्हें प्रबन्ध काव्यों से रुचि नहीं थी किन्तु जिन भूपों या सामन्तों का आश्रय कवि लोगों को मिला था उनमें विशेषतया कवि की विशृङ्खलित प्रतिभा को देखने का औत्सुक्य था। तथा कविगण भी कभी धन कमाने की प्रबल लालसा से, कभी-कभी राजा साहब की नाखुशी के कारण एक ही जगह डेरा जमाकर नहीं रह सकते थे। ऐसे माण्डलिक बहुत कम थे जो एक कवि को पूरी तौर से जीवन भर निवाह दें। स्वतन्त्र प्रज्ञ-क्रान्तिदर्शी कवि की यदि यह लालसा हुई कि वह स्वतन्त्रता के वातावरण में विचरे या राजान्तर के समीप गया कि पूर्व राजा का कोपभाजन होना मामूली बात थी। जिस प्रकार संस्कृत के कवि पण्डितराज जगन्नाथ को मुस्लिम राजा का आश्रय मिला, यहाँ तक कि शाहजहाँ की कन्या तक से उन्होंने सम्बन्ध किया था, यह कहावत प्रसिद्ध है; तथा जैसे नागोजी भट्ट को राजा रामसिंह का, जो कि सम्भवतः मिथिलेश थे—आश्रय मिला था तदनुसार पद्माकर भाग्य-नक्षत्रों के उतने प्रबल न थे। उन्हें कई सामन्तों के यहाँ उपस्थित होना पड़ा। कभी वे हिम्मत बहादुर के दरबार में रहते हैं, कभी प्रतापसिंह की सभा के रत्न बने बैठे हैं, कभी जयपुर जाते हैं तो कभी बूँदी। अतएव उनकी रचना में 'प्रबन्ध काव्यत्व' को ढूँढ़ना, बालू

में से तेल निकालना है। इसमें भी सन्देह नहीं कि रीतिकार कवि शिरोमणि केशव भी प्रबन्ध काव्य-रचना में पूर्णतया सफल नहीं हो पाए हैं। फिर भी अन्य जो आचार्य होने का दावा नहीं करते उनके विषय में सफलता की सोचना भूल ही होगी।

साथ ही यह भी नहीं विस्मरण करना चाहिए कि तात्कालिक परिस्थिति भी कवि की रचना को बहुत कुछ प्रभावित करती है। तदनुसार 'पद्माकर' के आविर्भाव के समय मराठों का राज्य विस्तार को प्राप्त कर रहा था, वे संगठित न होकर आपस में ही लड़ते थे, यही कारण हुआ कि मराठों का राज्य सुसंगठित न हो सका। तब बेचारे पद्माकर यदि इधर-उधर न भटकते तो फिर करते क्या। कल किस पर चढ़ाई करके कौन शासित शासक बन जायगा या कौन शासक शासित होगा या कौन स्वतन्त्र शासक परतन्त्र हो जायगा यह किसको विदित नहीं था। अतएव कविता बेचारी नर्तक की तरह दरबारों में नचायी जाती थी, और कविगण अपने मालिक को खुश करने के लिए वेश्यावृत्ति पर उतारू थे। इसमें सन्देह नहीं महाकवि भूषण, देव❀ आदि भी इसके अपवाद न थे। फिर पद्माकर ही उस गड्डुलिका प्रवाह का उल्लङ्घन या परिस्थिति की कठोर—कालायस-कल्पित वेड़ियों को कैसे काट सकते थे। उन्होंने ही अपने 'जगद् विनोद' और 'आलीजाह-प्रकाश' में कुछ ही अन्तर से दोनों को खुश कर दिया है, दास्य और दारिद्र्य का या धन-लोलुपता और परमुखापेक्षिता का इससे प्रवल और क्या प्रभाव हो सकता है। ऐसी अवस्था, में हम यदि रस-भाव ध्वनि को पद्माकर में टटोलें तो निराश ही होना पड़ेगा।

❀ देखिए देव का कुशल विलास व भवानी विलास।

हिम्मत बहादुर-विरुदावली व गङ्गालहरी आदि को ही यदि हम अपने सामने रक्खें तो हमें निश्चय पर पहुँचना ही पड़ेगा कि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित काव्य-परम्परा का निर्वाह-मात्र किया है तथा वास्तविकता से वे कोसों दूर हैं। पद्माकर की आँखों के सामने कविवर सूदन का 'सुजान चरित' काव्य अवश्य है तभी तो वे अर्जुनसिंह के सहायकों में राजपूतों के छत्तीसों कुलों का नाम गिना जाते हैं तथा तलवार और तोपों की गणना कराते समय ऐसे अनोखे-अनौखे नाम प्रस्तुत करते हैं कि आजकल के साइण्टिस्ट जिन्होंने 'एटमबम' का आविष्कार किया है वे भी यह सोचने लगें कि क्या ऐसी कोई तोप या तलवार है जो इन में नहीं है, जो 'एटमबम' से बढ़ कर या उसके बराबर हो। फिर उतनी तलवारों के या तोपों के चलाने की क्षमता भी किसी में है या नहीं, यह भी भूल जाते हैं। भाव यह कि 'सुजान चरित' में जो दोष हैं उसका काव्य-परिपाटी-पालन के लिए पद्माकर ने भी अनुकरण किया है—औचित्य विचार नहीं किया। यदि वे ऐसा करते तो कम-से-कम इतनी लम्बी यह अस्त्र-सूची इसमें न लगाते क्योंकि ध्वन्यालोककार ने काव्य का प्रथम प्रयोजन रसास्वादन बतलाया है। काव्य या काव्य वैपुल्य नहीं। ये लिखते हैं कि :—

सन्धि संन्ध्यंगघटनं रसाभिव्यक्तपेक्षणी।
न तु केवलया शास्त्रस्थिति सम्पादनेच्छया ॥२॥१५॥

साथ ही राजा के सामर्थ्य का भी ध्यान रखना आवश्यक है। 'अतिशयोक्ति' का पुट देते समय दूराकृष्ट अतिशयोक्ति तो नहीं, यह भी सोचना ही होगा। भूषण आदि कवियों की देखा देखी केवल परम्परा निर्वाह के लिए ही अविचार्य ऐसा वर्णन कर देना ठीक नहीं जो स्वाभाविकताहीन व ऐतिहासिक तथ्य से विपरीत हो।

ऐसे प्रसङ्गों की उक्त 'विरुदावली' में भी कमी नहीं जैसे केशव ने एक ऋषि के आश्रम में अंगूर की वेलें उगाई हैं जो कि आश्रम इलाहावाद और पटना के बीच में पड़ता है। वैसे ही यहाँ भी हिम्मत वहादुर ने अनेक तिलस्म कर दिखाए हैं।

एक वात जो अर्जुनसिंह के मुख से कहलवाई है वह वीर पुरुषोचित नहीं, वीर हो और फिर 'दैव-दैव' पुकारे तो ठीक वही गति होगी, जैसे गङ्गा की गैल में मदार के गीत या विवाह में मरसिया। पाठकवृन्द निम्नलिखित विरक्तजनोचित उक्ति का वीरोक्ति से सामञ्जस्य कहाँ तक वैठ सकता है यह स्वयं ही सोच लें:—

जिनकी वदी है मीच अव, तिनकी न इत-उत वचाहेगी।
जिनको नहीं है विधि रची, तिनके न तन को तचाहेगी॥
जग में जु जन्म विवाह जीवन मरन रिन धन धाम ये।
निति की जहाँ लिखदियो प्रभुतिहि को तुरत तिहि ठाम ये॥
मेंटै धनन्तर से जु वैद, सु यों अनेक विधै करै।
पर काल है जिहि को जहाँ तिहको तहाँ ते नहिं टरै॥
चढ़ि जाइ हिमगिरि हाँकि कै, लपटाइ आसुर अजव सों।
तत्काल जो निजकाल नहिं तो वचहि ए ते गजव सों॥

वीररस का स्थायीभाव उत्साह है। वह इन उक्तियों से परिपुष्ट नहीं होता। पद्माकर को अर्जुनसिंह से कहलवाना तो यह चाहिये था कि—

"यदि समर मपास्य नास्ति मृत्यो,
भंयामिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्य-मेव जन्तोः,
किमित मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे॥"

अर्थात् वीरो ! मौत मे मत डरो, वह तो निश्चित् है ही, फिर रण में पीठ दिखाकर आज अपने मुख पर कालिख मत पोतो। रण से भागने पर भी "भक्षितेऽपि लशुनेन शान्ता व्याधि" काम भला ही होगा—अतः खुशी से ताल ठोंक कर वीर गति प्राप्त करो, इत्यादि पर यह बात कहने में जरा वे चूक गए।

पद्माकर के स्फुट संग्रह में कहीं-कहीं अश्लीलता भी दिखाई पड़ती है। पर यह सब समय का प्रभाव है, या होली का हुल्लड़ है। पद्माकर को इस विषय में हम दोष नहीं देंगे। प्रबोध-पचासा आदि रचनाओं में कवि ने अपनी ज्ञान-गठरी का प्रसाद सभी को भर पेट बाँटा है। जैसा पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे।

'पद्माभरण' व 'रस-निरूपण'

उक्त दोनों रचनाओं में पद्माकर ने अपनी अनूठी प्रतिभा के प्रकाश से हिन्दी मन्दिर आलोकित कर दिया है। अभी तक अलङ्कारों का निरूपण दो प्रकार से होता चला आया है, 'चन्द्रालोक' के समान लक्ष्य, लक्षण दोनों को एक ही में रखने से या फिर दोहों में लक्षण और उदाहरण कवित्त, सवैये आदि में। एक यह भी मार्ग रीति कालीन कवियों में रहा है कि वे गुण-दोष-व्यञ्जना आदि के विवेचन के साथ-साथ उसी ग्रन्थ में अलङ्कार निरूपण कर देते हैं या फिर अलग ही—'अलङ्कार प्रकरण' बना देते हैं। सम्पूर्ण काव्याङ्गों पर जिन्होंने रचना की हो ऐसे विद्वान् कवि हिन्दी-क्षेत्र में बहुत कम हैं और वे हैं:—केशव, चिन्तामणि कुलपति, श्रीपति, सुरतिमिश्र, भिखारीदास आदि। जिन पुस्तकों में कवित्त व सवैयों में अलङ्कारों के उदाहरण लिखे हैं उनमें ललित-ललाम, शिवराज भूषण आदि ग्रन्थ अग्रगण्य हैं, तथा साधारण-

तथा इनका आलम्बन जसवन्तसिंह का बनाया 'भाषा भूषण' ही विशेतया रहा है जिसका आधार जयदेव कवि कृत 'चन्द्रालोक' है। किन्तु पद्माकर का 'पद्माभरण' 'चन्द्रालोक' का अनुवाद नहीं, तथा इसके पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत रचना वैरी साल के "भाषाऽऽभरण" का भी आश्रय लेकर बनाई गई है। वैरीसाल ने अपनी रचना "कुवलयानन्द" का आधार लेकर की है। पर पद्माकर ने अपना तीसरा ही मार्ग निकाला है। 'भाषा-भरण' के अनुगमन की पुष्टि के लिये नीचे लिखी रचना का तारतम्य ही पुष्ट प्रमाण होगा:—

कहुँ पद ते कहुँ अर्थ ते कहुँ दुइनते जोइ।
अभिप्राय जैसो जहाँ, अलङ्कार त्यों होइ॥

—भाषाभरण

शब्दहु ते कहूँ अर्थ तें, कहुँ दुहुँ ते उर आनि।
अभिप्राय जिहि भाँति जहँ, अलङ्कार सो मानि॥

—पद्माभरण

पद्माकर उदाहरण देते समय वहुत स्वतन्त्र हो गए। प्रायः वे सब उनके ही हैं, वहाँ छायानुवाद भी कठिनता से परिलक्षित होता है। पद्माकर के लक्षण संस्कृत के अनुसार ही हैं। कही-कहीं वे अस्पष्ट भी इस ही कारण हैं। आखिर असल में और नकल में फर्क तो होता ही है। हम यहाँ इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहते कि 'अलङ्कार प्रेमी विद्वानों ने इस ओर ध्यान को क्यों गौण बनाया। तथा अलङ्कार 'हारादिवत्' है या 'सौन्दर्यवत्'। हाँ, यह ठीक है कि संस्कृत में इस विषय का वड़ा मत भेद रहा है। वामन, दण्डी, रुद्रट, आदि ने अलङ्कारों को ही प्रधान माना है। तथा

उसको ही चमत्कार दायक माना है। कुछ भी हो पद्माकर ने आचार्यों की श्रेणी में आने के इस ओर भी कलम उठाई पर विवेचनात्मक दृष्टि का आचार्यों में होना नान्तरीयक होता है उसका अभाव ही है। 'जगद्विनोद' में उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का भी अच्छा परिचय दिया है। अतएव 'पद्माभरण' अलङ्कार के लिए एक उत्तम ग्रन्थ कहा जा सकता है।

रस क्यों और कैसे पैदा होता है, तथा रस की "संयोगात्" इस भरत के सूत्रांश के आधार पर उत्पत्ति, ज्ञप्ति, मुक्ति और व्यक्ति में कौन-सा अर्थ ठीक है यह तो है वितण्डा-अनावश्यक विस्तार। पर इस भाव निरूपण में पद्माकर किसी से पीछे नहीं हैं। भाव निरूपण इनका अच्छा वन पड़ा है पर भाव सांकर्य से वे नहीं वचे हैं। इस निरूपण में कहीं-कहीं 'स्वशब्दवाच्यत्व' बुरी तरह खलता है। जैसे हास्य रस के उदाहरण में :—

"सोस पर गंगा हसै, भुजनि भुजंगा हँसैं।
हास ही को दंगा मचो, नंगा के विवाह मैं ॥

श्रृङ्गार वर्णन आजकल उपेक्ष्य हो गया है। क्योंकि छात्रों के लिए 'मिलिटरी ट्रेनिंग' अनिवार्य हो गई है, पर उसका असर हृदय पर नहीं, शरीर पर ही है। मन पर तो व्यापक श्रृङ्गार का, रस राज का ही, राज है—जिसमें प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा, भक्ति, सख्य, आत्म-निवेदन आदि सब कुछ आ जाते हैं। उस श्रृङ्गार के वर्णन में भी पद्माकर की भावना बड़ी उदात्त रही है। ऋतु-वर्णन में पद्माकर ने जहाँ "वाला" एक 'मसाला' बनाई है वह भी तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव ही समझिए। पद्माकर का यह विषय वर्णन कैसा अनूठा है देखिए :—

बछरै खरी प्यावै गऊ तिहि "पदमाकर" का मन लावत है।
तिय जान गिरैया गहरो वनमाल सुऐंचे लला उचो छावत है।
उलटो करि दोहनी मोहनो की अँगुरी थन जानकै दावत है।
दुहि वौ औ दुहाइबो दौउन को सखि देखत ही बन आवत है।

भाव मग्नता का वड़ा ही जीता जागता उदाहरण है।

× × × ×

'प्रबोध पचासा' के अतिरिक्त पद्माकर ने 'गङ्गालहरी' की रचना भी भक्ति-भावना से प्रेरित होकर की है जिसमें संदेह, उल्लेख आदि अलङ्कारों का खूब ही समावेश बन पड़ा है। उसमें गङ्गा की स्थिति, नाम स्मरण से मुक्ति, तथा स्नान से शिवरूपता की प्राप्ति का वर्णन है, पर इसमें इनकी अपनी सूझ है—इसमें शृङ्गार का लेश भी नहीं है; न भावापहरण ही है।

पद्माकर की भक्ति-भावना

पद्माकरजी ने अपनी भक्ति-विषयक कविताओं में संसार की जटिलताओं का वर्णन अधिक किया है। जीवन की विकट परि-स्थितियों से व्यथित होकर ही उनके हृदय में भक्ति का उद्रेक हुआ। उन्होंने अपनी कविता में कहीं पेट की वेगार का वर्णन किया है तो कहीं झूँठी तृष्णा और संकुचित मनोवृत्ति का निरूपण किया है। संत कवियों की भाँति शरीर की नश्वरता का जहाँ कहीं वर्णन किया है वहाँ संसारी व्यथायें भी झलक मारती ही हैं। जैसे—

धोखा की धुजा है और सजा है महादोषन की,
मल की मँजूषी मोह-माया को निसानी है।
कहैं "पदमाकर" सु पानी-भरी खाल, ताके
खातिर खराब कत होत अभिमानी है॥

पद्माकरजी ने सूर, तुलसी और मीरा की भाँति एक ही बात कई छंदों में कही है। इसका कारण उनकी भाव-प्रवणता ही है। यह पुनरुक्ति दोष नहीं बल्कि कवि की तल्लीनता है। पद्माकर की पुनरुक्ति में भी सदा कोई-न-कोई नई बात अवश्य कह दी जाती है। नींव पुरानी होते हुए भी हर छंद में नई दीवार उठी दिखाई देती है।

पद्माकरजी की कविताओं में एक और विशेषता है। वे जिस रस में कविता करते हैं उस रस के अतिरिक्त अन्य कोई रस उस समय प्रयोग में नहीं लाते। पंडितराज जगन्नाथ ने अपनी "गंगा-लहरी" में शृंगार का पुट दे ही दिया है किन्तु पद्माकरजी पंडित-राज की भाँति शृङ्गारी होते हुए भी अपनी कविता को शृंगार से बचा ले गए। भक्ति और शृङ्गार का संमिश्रण इन्होंने कभी नहीं होने दिया।

पद्माकरजी ने जिन-जिन देवताओं के बारे में लिखा है उसके देखने से विदित होता है कि वे लौकिक दृष्टि से ही चलते हैं। लोक में पूजे जाने वाले लगभग सभी देवताओं का वर्णन उन्होंने एक ही प्रकार के भक्ति-भाव से किया। उन्होंने समाज की बँधी हुई भावना के रूप में राम को विष्णु का अवतार माना है। संकुचित मनोवृत्ति के आधार पर उन्होंने राम को विधि, हरि और हर से ऊपर साकेतवासी नहीं माना है। उन्होंने राम, कृष्ण और शिव में एक ही भगवान को देखा है। उनके राम तुलसी के राम की तरह "विधि हरि संभु नचावनहारे" नहीं।

पद्माकर शैव थे या वैष्णव

पद्माकर के वर्णन से पञ्चदेवोपासना व्यक्त हो रही है। पद्माकर ने 'त्रिदेव' भक्ति का वर्णन किया है पर किसी में कोई कमी नहीं बतलाई। उन्होंने अपनी दीनता का वर्णन भी बड़ा हृदयग्राही किया है:—

सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि।
साँचोई कलङ्की ताहि कैसे अपनाओगे ॥
× × × ×
लंकागढ़ तोरिबें तें, रावन तें रौरिबें तें।
मोहि भव बंधन तें, छोरिबो कठिन है॥

भाषा

पद्माकर का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। भावों को पाठक के हृदय में प्रवेश कराने वाली तथा भाव-वहन करने वाली भाषा ही होती है, भाषा रस रूपी आत्मा का शरीर है, भद्दी भाषा भौंड़े कुरूप शरीर की तरह सुहावनी नहीं लगती। पद्माकर ने अपनी भाषा में शब्दशय्या, वर्णमैत्री, रमणीयता, सानुप्रासता व भावानुकूलता आदि सभी गुणों का समावेश कर दिया है। भाषा कुल के विचार से इनकी भाषा ब्रज भाषा है पर लौकिकता मिश्रित। इनकी कविता में विभक्तियों का रूप कुछ पुराने ढंग का है। भाषा में वृत्ति विरोध नितरां नहीं है। इन्होंने सीधे-सादे भावों को प्रौढ़ भाषा में व्यक्त कर के मुक्तक रचना करने वाले कवियों में एक स्थान बना लिया है। मुक्तक-रचना का इन्हें सफल कवि कहा जा सकता है।

उक्त सब गुणों के कारण ही पद्माकर का प्रभाव अन्य कवियों पर पड़ा है। ग्वाल की यमुना लहरी, पद्माकर की गंगालहरी का अनुकरण है, तथा 'रस-रंग' जगद्विनोद का। इसी प्रकार प्राचीन कवियों में द्विजदेव और लछिराम भी उनके प्रभाव से अछूते नहीं हैं। आधुनिक कवियों में 'महाकवि रत्नाकर' भी भाषा-शैली में पद्माकर के ही अनुयायी हैं तथा प्रभावित हैं। यह दूसरी बात है कि उनकी भाषा कहीं-कहीं पद्माकर से भी सुघड़ बन

गई है। दोनों की तुलना के लिए निम्नलिखित वर्णन ध्यान से पढ़िए तथा मिलान कीजिए।

विधि वरदायक की सुकृति-समृद्धि-वृद्धि;
संभु सुरनायक की सिद्धि की सुनाका है।
कहै 'रतनाकर' त्रिलोक सोक नासन को,
अतुल त्रिविक्रम के विक्रम की साका है।
जमभयहारी तम तोम निरवारन को,
गङ्गयूइ रावरी तरंग तुङ्ग राका है।
सगर कुमारनि के तारन की सेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है।

—रत्नाकर

विधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही।
हरि पद पङ्कज प्रताप की लहर है।
कहै पदमाकर गिरीस सीस मण्डल के,
मुण्डन की माल तत्काल अघहर है।
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य पथ,
जन्हु-जप-जोग फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलि काल की कहर जम जाल की जहर है।

पद्माकर की भाषा कैसी प्यारी है। अतः पद्माकर के पदचिह्नों पर चलकर अनेक कविवरों ने पद्माकर को सम्मान प्रदान किया है।

इस प्रकार पद्माकर की रचनाएँ हिन्दी साहित्य की अनुपम विभूतियाँ हैं जो सुरसरि की धारा के अवगाहन की तरह पाठकों को प्रसन्न तथा सुधासागर में प्रलयकाल तक, तरंगित करती रहेंगी।

—सम्पादक

१

गंगा-लहरी

॥ दोहा ॥

हरि हर बिधि को सुमिरि कै, काटहु कठिन कलेस ॥
कवि 'पद्माकर' करत है, गंगा-लहरी वेस ॥१॥

कवित्त

वई ती बिरंच भई बामन-पगन पर,
फैली-फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की।
आई कै जहान जन्हु जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्ही तीन पथ की॥
कहै 'पद्माकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गंगा नाम पायो सोही सबके अरथ की।
चारयो फल-फली फूली गहगही बहबही,
लहलही कीरति लता है भगीरथ की॥२॥

कूरम पै कोल कोल हू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है तिथि रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की॥३॥

करम को मूल तन तन-मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनँद ही धरिबो।
कहै 'पदमाकर' त्यों आनँद को मूल राज,
राज मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो॥
प्रजा-मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो।
जज्ञन को मूल धन, धन-मूल धर्म अरु,
धर्म-मूल गंगाजल-बिंदु पान करिबो ॥४॥

सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
गंगा मैया धोई तू तो देह निज आप है।
कहै 'पदमाकर' सु महिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है॥
जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप है।
बाँची बही वा की गति देखि कै विचित्र रहे
चित्र-कैसे लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है ॥५॥

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज, यह
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम पै कान दै।
कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँदि करि,
'मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै॥
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, या तें
दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगिन पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै बही को बहि जान दै॥६॥

जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि बिताओ जग जोयन को जोइ कै।
कहै 'पद्माकर' सुदेवन की सेवन तें
दूरि रहे पूरि मति-बेदरद होइ कै॥
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी, कलि-
काल की कथान में रहे जो मति खोइ कै।
तेऊ विस्नु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै॥७॥

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
तैसो अब तो सों हौंहूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जौ परैगो तौ,
उमंडि करि तो सों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु विचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥८॥

आयो जौन तेरी धौरी धारा में धसत जात,
तिन को न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पद्माकर' तिहारो नाम जा के मुख,
ता के मुख अमृत की पुंज सरसात है॥
तेरो तोय छ्वै कै औ छुवति तन जाको वात,
तिन की चलै न जमलोकन में बात है।
जहाँ-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥९॥

जमपुर द्वारे लगे तिन में केवारे, कोउ
है न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं।
कहै 'पद्माकर' तिहारे प्रन धारे तेउ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिंधु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥१०॥

सुचित गोविंद ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
जलजन्तु पंति जरि जैवे को अमिलती।
कहै 'पद्माकर' सु जादा कहौं कौन अब,
जाति मरजादा ह्वै मही की अनमिलती॥
जल थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति,
मुनिजन जापकन जो न दुरि मिलती।
सूखि जातो सिंधु वड़वानल की झारन सों,
जो न गंगाधार ह्वै हजार धार मिलती ॥११॥

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद पंकज-प्रताप की लहर है।
कहै 'पदमाकर' गिरीस-सीस-मंडल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जन्हु-जप-जोग-फल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है।१२।

हौं तौ पंचभूत तजिवे को तक्यो तोहि; पर
तें तौ करथौ मोहिं भलो भूतन को पति है।
कहै 'पद्माकर' सु एक तन तारिवे में,
कीन्हे तन ग्यारह कहौ सो कौनि गति है॥
मेरे भाग गंग यहै लिखी भागीरथी, तुम्हैं
कहिए कछुक तौ कितेक मेरी मति है।
एक भवसूल आयौं मेटिवे को तेरे कूल,
तोहि तौ त्रिसूल देत वार न लगति है॥१३॥

भाषा होति भूषित सु पूरी अभिलाषा होति,
सुजस-लतान की सु साखा है सुगति की।
कहै 'पद्माकर' त्यों वदन विसाल होत,
हाल होत हेरि छल-छिद्रन की खति की॥
गंगाजू तिहारे गुनगान करें अजगवै,
आनि होति बरषा सु आनँद की अति की।
पूर होत पुन्यन को धूर होत अधरम,
चूर होति चिंता दूर होति दुरमति की॥१४॥

सूधरो जो होतो माँगि लेतो और दूजो कहूँ,
जाती वन खेती कार खातो एक हर की।
ए तो 'पद्माकर' न मानत है नाथि चलें,
भुजन के साथ हैं गेरया अजगर की॥
मैं तो याहि छोड़ौं पै न मौ को यह छोड़त है,
फेरि लै री फेरि व्याधि आपने बगर की।
सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंगा,
कसो बैल दीन्हों जो न गैल गहै घर की॥१५॥

जोग जप जागै छाँड़ि जाहु न परागै भैया,
मेरी कही आँखिन के आगे सु तौ आवैगी
कहै 'पद्माकर' न ऐहै काम सरस्वती,
साँच हू कलिंदी कान करन न पावैगी ॥
लैहै छीनि अंबर दिगंबर कै जोरावरी,
बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावैगी ।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,
सु गंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी ॥१६॥

लोचन असम अंग भसम चिता को लाइ,
तीनों लोक नायक सो कैसें कै ठहरतो ।
कहै 'पद्माकर' विलोकि इमि ढंग जाके
वेद हू पुरान गान कैसे अनुसरतो ॥
बाँधे जटाजूट बैठि परवत-कूल माहिं,
महाकालकूट कहौ कैसे कै ठहरतो ।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै, ऐसे
पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो ॥१७॥

पापन की पाँति भाँति-भाँति बिललाति परी,
जम की जमाति हलकंपन हिलति है ।
कहै 'पद्माकर' हमेसा दिव्य-वीथिन में,
बानन की रेल-ठेल ठेलनि ठिलति है ॥
सुरधुनि रावरे उधारे जग-जीवन की,
छिन-छिन सेन शिवलोक की मिलति है ।
आसन अरघ देत-देत निसिबासर,
बिचारे पाकसासन को साँस न मिलति है ॥१८॥

सबन के बीच बीच-समै महानीच-मुख
गंगा मैया तेरे आजु रेनु-कन ह्वै गये।
कहै 'पद्माकर' दसा यों सुनौ ताकी वा की,
छवि की छंटान सों त्यों छित-छोर छ्वै गये ॥
दूत दबकाने चित्रगुप्त चुपकाने, औ
जकाने जमजाल पाप-पुंज लुंज ह्वै गये।
चारिमुख चारिभुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
पंचन के देखत ही पंचमुख ह्वै गये ॥१९॥

कलि के कलंकी कूर कुटिल कुराही केते,
तरि गे तुरंग तवै लीन्हीं रेनु-राह जब।
कहै 'पद्माकर' प्रयास विन पावै सिद्धि,
मानत न कोऊ ज़मदूतन की दाह दब ॥
कागज करम करतूति के उठाइ धरे,
पचि-पचि पेच में परे हैं प्रेतनाह अब।
वेपरद वेदरद गजब गुनाहिन के,
गंगा की गरद कीन्हें गरद गुनाह सब ॥२०॥

रेनुका की रासन मैं कीच-कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै 'पद्माकर' तहाँई मंजु सूरन में,
धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के ॥
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में
मँझरा मँझारन में झारन में झाऊ के ॥२१॥

तेरे तीर जौं लौं एक लहर निहारियतु,
तौं लौं कैयो लच्छ सूच्छ लहरन धारती
कहै 'पदमाकर' चहौं जौ वरदान, तौ लौं
कैयो वरदानन के गान अनुसारती ॥
जौ लौं लगौं काहू सों कहन कला एक तौ लौं,
कैयो लच्छ कला के समूहन सँभारती।
जौ लौं एक तारे को हौं रचत कवित्त गंगे,
तौ लौं तुम केतिक करोरि तारि डारती ॥२२॥

गंगाजू तिहारे तीर आछी भाँति 'पदमाकर'
देखि एक पातकी की अदभुत गति है।
आइ कै गौविंद बाँह धरि कै गरुडजू पै,
आपनेई लोक जाइवे की कीन्ही मति है॥
जौ लौं चलिबे को भये गाफिल गोबिंद तौ लौं,
चोरि चतुरानन चलाई हंसगति है।
जौ लौं चतुरानन चितैवे चारों ओर, तौ लौं
वृष पै चढ़ाइ लै गयोई वृषपति है ॥२३॥

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइवे को,
ता सों कहै कोऊ एक अधम अपान में।
जाहु जानि पंथी उत विपति विसेषि होति,
मिलैगो महान कालकूट खान-पान में॥
कहै 'पदमाकर' भुजंगनि बँधैंगे अंग,
संग में सु भारी भूत चलैंगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल, बिन,
अंबर फिरैगो तू दिगंबर दिसान में ॥२४॥

कैधौं तिहूँ लोक की सिंगार की विसाल माल,
कैधौं जगी जग मैं जमाति तीरथन की।
कहै 'पद्माकर' विराजै सुरसिन्धु-धार,
कैधौं दूधधार, कामधेनुन के थन की॥
भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं,
प्रगटी तपस्या कैधौं पूरी जन्हु-जन की।
कैधौं कछु राखै राकापति सों इलाका भारी,
भूमि की सलाका कै पताका पुन्य-गन की॥२५॥

जम को न जोर सब पापिन पै चल्यो तब,
हाथ जोरि गंगाजू सों चुगली करैं खरे।
बड़ेन पै ढरौ पै ना ढरौ देवि तुच्छन पै,
कहै 'पद्माकर' सुनावत हरे-हरे॥
बड़ेन पै ढरे बड़ी पाइये बड़ाई देखौ,
ईस पै ढरीं तौ तुम्हैं ईस सीस पै ढरे।
तुच्छन को देतीं जैसो नारायन रूप, तैसो
तुच्छ तुम्हें तुच्छ करि पायन तरे करे॥२६॥

अधम अजान एक चढ़ि कै विमान भाष्यो,
बूझत हौं गंगा तोहि परि-परि पाइ हौं।
कहै "पद्माकर" कृपा करि बतावै साँची,
देखे अति अद्भुत रावरे सुभाइ हौं॥
तेरे गुनगान ही की महिमा महान मैया,
कान-कान नाइ कै जहान-मध्य छाइहौं।
एक मुख गाये ता कै पंचमुख पाये, अब
पंचमुख गाइहौं तो केते मुख पाइहौं॥२७॥

पापन की पाँति महामंद मुख मैली भई,
दीपति दुचंद फैली धरम समाज की।
कहै "पदमाकर" त्यों रोगन की राह परी,
दाह परी दुःखन में गाह अति गाज की॥
जा दिन तें भूमि माहिं भगीरथ आनी, जग
जानी गंगधारा या अपारा सब काज की।
ता दिन तें जानी-सी विकानी बिललानी-सी,
बिलानी-सी दिखानी राजधानी जमराज की॥२८॥

जम के जसूस बिनै जम सों हमेस करैं,
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।
बड़े-बड़े पापी औ सुरापी द्विज-तापी, तहाँ
चलन न पावै कहूँ हुकुम हमारो है॥
कहै 'पदमाकर' सुब्रह्मलोक विस्नुलोक,
नाम लैकै कोऊ सिवलोक को सिधारो है।
बैठी सीस नंगा के तरंगा ह्वै अभंगा, ऐसी,
गंगा ने उठाइ दीन्हों अमल तिहारो है॥२९॥

बिन जप जज्ञ दान तीछन तपस्या ध्यान,
चाहत हौ जो पै तिहूँ लोक में महाउदोत।
कहै 'पदमाकर' सुनौं तौ हाल, हामी भरौ,
लिखौ कहौ लै कै कहुँ कागद-कलम-दोत॥
गंगाजू के नाम सुने हामी भरे लिखे कहे,
ऐसे चढ़ि जात कछु पुन्यन के पूरे गोत।
सौ गुने सुने तें औ हजार गुने हामी भरे,
लाख गुने लिखत करोरि गुने कहे होत॥३०॥

परो एक पतित पराउ तीर गंगाजू के,
कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुंठित कुढंगी अंध।
कहै 'पद्माकर' कहाँ मैं कौन वा की दसा,
कीट परि गये तन आवै महा दुरगंध॥
पाप हाल छूटिगे सु लूटिगे विपत्ति-जाल,
टूटिगे तड़ाक दै सुनाम लेत भवबंध।
गं कहे गनेस-वेस दौरि गही बाँह अरु,
गा के कहैं गरुड़ चढ़ाइ लीन्हों निज कंध॥३१॥

सरद घटा-सी खासी उठती अटा-सी,
दुपटा-सी छिति छीरधि-छटा-सी निरधारिये।
सज्जा-सी छुटी-सी छारद्वारी-सी गढ़ी-सी गढ़,
मठ-सी मढ़ी-सी औ गढ़ी के ढार ढारिये॥
कहै 'पद्माकर' सु धौरी-धौरी दौरी आवै,
चौरी-चौरी चंचल सुचारु चिन्हवारिये।
हरे-हरे छवि नई-नई न्यारी-न्यारी नित,
लहरैं निहारि प्यारी गंगाजू तिहारिये॥३२॥

बिघन बिनास भवपास होत नासै भासै,
नासै पुन्य-पुंज को प्रकासै रंगरंगा के।
सुख की समाजै उपराजै साज छाजै छिति,
घन-सी गराजै राजै सीस ईस नंगा के॥
कहै 'पदमाकर' सुजानै करि ज्ञानै जानै,
तानै मनमानै भोग आनै देव-अंगा के।
सुंदर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे,
अघ-ओघ-भंगा ये तरंगा देवि गंगा के॥३३॥

तहाँ आइ भूमि तें लगाइ आसमान हू लौं,
जानि गिरवान औ विमानन के जुरे थोक।
कहै 'पद्माकर' जो कोऊ नर जैसे तैसे, तन
देत गंगा तीरे तजि कै महान सोक॥
सो तौ देत व्याधै विष दुःखन दिनाई देत,
पापन के पुंज को पहारन को ठोक-ठोक।
दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत,
जम को जरब देत पापी लेत सिवलोक॥३४॥

सुखद सुहाई मनभाई मुनिदेवन के,
निखिल निकाई रूप वेदन में गाई है।
कहै 'पद्माकर' कहाँ लौं साधुताई कहौं,
सब ही पै एक-सी दया-सी बगराई है॥
पुन्यताई धारत उधारत अधमताई,
नीक ठंकुराई की ठसक ठहराई है।
जहाँ-जहाँ जम की जमाति कीन्ह करामाति,
तहाँ-तहाँ फिरै देवि गंगा की दुहाई है॥३५॥

गंगा जू के नीर-तीर छोड़े हैं सरीर जिन,
तेऊ गने जात पुन्यवंतन की धुर हैं।
कहै 'पद्माकर' त्यों तिन की जलूसैं लखि,
गीरवान सकल सराहैं जुर-जुर हैं॥
सारथी गोबिंद दीपदानवारे भानु होत,
पंखवारे भारे पाकसासन-से सुर हैं।
खौरवारे बरुन तमोरबारे तारापति,
चौरवारे चारु चतुरानन चतुर हैं॥६६॥

एक महापातकी सुगात की दसा विलोकि,
देत यों उराहनो सु आठ हू पहर है।
मीच-समै तेरे उत आप गये कंठ, इत,
व्यापि गयो कंठ कालकूटसो जहर है॥
आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्हीं बकसीस,
औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है।
मोहि करि नंगा अंग-अंगनि भुजंगा बाँधो,
ए री मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है॥३७॥

कीजतु फिराद सुन लीजिये हमारी गंगा,
साखन के साथी दुःख दिग्गज डिगाये तू।
कहै 'पदमाकर' जु जानत न कोऊ दूजो,
तीन जस जगा-जगा जगद्रुम गाये तू॥
आयो हतो हौं तो कछु लेवे को तिहारे पास,
जनम के जोरे मेरे पातक हिराये तू।
छोड़ि-छोड़ि तत्र तन सोये ते गरीब जे वै,
ते वै पूरे-पूरे पुन्य-पटल जगाये तू॥३८॥

मुनि मन माने सनमाने सारदादि वंदि,
नारदादि जाने जे बखाने वेद-बानी के।
आप अविनासी हैं विनासी दुःखजालन के,
पुन्य के प्रकासी प्रन-पूरक सु प्रानी के॥
कहै 'पदमाकर' सु पाप-तम-पूषन हैं,
दूषन-रहित भव-भूषन महानी के।
ध्यावौ अब ध्यावौ लोक पावौ देवदेवन के,
गावौ अरे गावौ गुन गंगा महारानी के॥३९॥

लाइ भूमिलोक तें जसूस जबरई जाइ,
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि जम कही कै,
विचारौ तौ करम-गति ऐसे अपवित्र की॥
जौ लौं लगे कागद विचारन कछुक तौ लौं,
ता के कान परी धुनि गंगा के चरित्र की।
वाके सीस ही तें ऐसी गंगधार बही, जा में,
बही-बही फिरी वही चित्र औ गुपित्र की॥४०॥

सुरसरि मैया एक पातकी पुकारयों तोहि,
ऐसो दिव्य दीन्हों तपतेज वोहि तैं नै है।
कहै 'पद्माकर' स्वलोक तिहि आगे रखि,
करत प्रनाम सुरवृन्द सब नै-नै है॥
व्याकुल विलोकि वह बोल्यो देवि देवन सों,
कोऊ ना डराहु तुम्हें और कछु दैनै है।
इंद्र सों कहत मोहिं लैनै है न इन्द्रलोक,
संभुलोक लैनै के गोविंद लोक लैनै है॥४१॥

हेरि-हेरि हँसत न चाहत हरषि चढ्यो,
वैल हूँ विलोकि मन वाकी ओर टरको।
कहै 'पद्माकर' सु देखि कै गरुड़ हू को,
लेखि निज भाग अनुरागि कै न सरको॥
का पै चढ़ौं कौन तजौं चाहत सबन,
यह सोचत पतित परयो गंग-तीर पर को।
जौ लौं घरी द्वैक रूप हरको न पायो, तो लौं
पातकी विचारो भयौ चोर भरे घर को॥४२॥

वा को जस कितहुँ न जाग्यो परतच्छपई,
या को धाम-धाम फैलि-फैलि रह्यो जस है।
वा को सुन्यो एक देवलोक में दरस होत,
या को तौ दिखात तिहुँ लोक में दरस है॥
कहै 'पदमाकर' सुदान वह माँगे देत,
ये तौ विन माँगे सबै देत सरवस है।
आछो अभिराम कहै पूरन सकल काम,
गंगाजू को नाम कामतरु तें सरस है ॥४३॥

सारमाला सत्य की विचारमाला वेदन की,
भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की।
आछी आपमाला या अनादि ब्रह्मवेस की॥
कहै 'पदमाकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
गंगाजू की धारा धनमाला है धनेस की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला है महेस की ॥४४॥

ज्ञानन में ध्यानन में निगम-निदानन में,
मिलत न क्यौं हूँ हरि ही में ध्याइयतु है।
कहै 'पदमाकर' न तच्छन प्रतच्छ होत,
अच्छन के आगे हू अधिच्छ गाइयतु है॥
इंदिरा के मन्दिर में सुनिये अनंद-भरे,
बीधे भव-फन्द तहाँ कैसे जाइयतु है।
वेदन के बृन्द में न पैयैं छीरसिंधु में,
सु गंगाजल-बिंद में गुविंद पाइयतु है ॥४५॥

नीर के निकट रेनु-रंजित लसै यों तट,
एकपट चादर की चाँदनी बिछाई-सी।
कहै 'पद्‌माकर' त्यों करत कलोल लोक,
आबरत पूरे रासमंडल की पाई-सी॥
बिसद विहंगन की वानी राग राचती-सी,
नाचती तरंग ऐन आनँद बधाई-सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाई, फिरै,
धाई-धाई गंगाधर सरद-जुन्हाई-सी॥४६॥

काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
इन की जंजीरन को जारिहै पै जारिहै।
कहै 'पद्‌माकर' पसारि पुन्य चारौं ओर,
चारौ फल धामन में धारिहै पै धारिहै॥
छोभ छल छंदन को बाढ़े पाप-बृंदन को,
फिकिरि के फंदन को फारिहै पै फारिहै।
एक बार वारि जिन गंगा को पियो है,
तिन्हैं तारनि तरंगिनी या तारिहै पै तारिहै॥४७॥

मुंडन की माल देखौ भाल पर ज्वाल कीबो,
छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो।
कहै 'पद्‌माकर' त्यों बैल पै चढ़ाइबो,
उढ़ाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसौ॥
नंगा करि डारिबो सुभंगा भखि डारिबो,
सुगंगा दुख मानिबो न बूझै तें कछू वैसौ।
साँपनि सिंगारिबो गरे में विष पारिबो,
जुतारिबो ऐसो तौं बिगारिबो कहौ कैसौ॥४८॥

सूधे भये जे हैं नर गंगा के अन्हाइवे को,
कामी बदनामी झामी कैयक करोर हैं।
कहैं 'पदमाकर' त्यों तिन की अवाइन के,
मचि रहे जोर सुर-लोकन में सोर हैं॥
वार-वार हाट-सी लगाये लखें घाट-घाट
वाट हेरैं तीर में कवै धौं तन वोर हैं।
एक ओर गरुड़ सुहंस एक ओर ठाढ़े,
एक ओर नाँदिया विमान एक ओर हैं॥४९॥

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाढ़ हू के पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे।
कहै 'पदमाकर' कुरोग सें सँघाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे॥
दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गये,
फिकिरि के फन्द विन छोरे छुटि-छुटि गे।
जो लौं आउ-आउ तेरे तीर पर गङ्गा तौ लौं,
वीच ही में मेरे पाप-पुञ्ज लुटि-लुटि गे॥५०॥

भूमिलोक भुवलोक स्वर्गलोक महालोक,
जनलोक तपलोक सत्यलोक कल में।
कहै 'पदमाकर' अतल में वितल में,
सुतल में रसातल में मंजु महातल में॥
त्यों मैं तलातल में पताल में अचल चल,
जेते जीव-जन्तु वसैं भाषा सकल में।
बीच में न बिलमैं बिराजै विस्नु-थल मैं,
सु गङ्गाजू के जल में अन्हाये एक पल में॥५१॥

जनम-जनम जिन छोड्यो तौ न तेरो संग,
अंग-अंग नित ही रहे जे लपटाने हैं।
कहै 'पद्माकर' तुम्हारी सौंह गङ्गा जोग-
जप के जतन में न नेकु अकुलाने हैं॥
कौन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब,
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कचरे करार में बहे कै बीच धार में, कै
बूड़े वै सेवार में कि बारू में बिलाने हैं ॥५२॥

योग हू में भोग में वियोग में संयोग हू में,
रोग हू में रस में न नेंकौ विसराइये।
कहै 'पद्माकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
फैल में फैल-फैल गैलन में गाइये।
बैरिन में बंधु में बिथा में बँसवालन में,
बिषय में रन हू में जहाँ-जहाँ जाइये।
सोच हूं में सुख में सुरी में साहिबी में कहूँ,
गङ्गा गङ्गा गङ्गा कहि जनम बिताइये ॥५३॥

दोहा

गिरिस गजानन गिरिसुता, ध्याइ समुझि श्रुति-पन्थ।
कवि 'पद्माकर' ही कियो, गङ्गालहरी ग्रन्थ ॥५४॥

कवित्त

भारी-सो भुजङ्ग भागीरथि के सुतीर परयो,
ताहि लखि खाइवे को तरछत पार भो।
कहै 'पदमाकर' चतुरभुज को रूप भयो,
बड़े-बड़े पापनि हूँ ताप को तिसार भो।
नारद विसारद हू सारद सराहैं भले,
इन्द्र जम वरुन कुवेर परिवार भो।
गङ्गा के प्रभाव लखि मुकुति-मजाकी मंजु,
सोई अहि गरुड़ के कंध पै सवार भो ॥५५॥

दोहा

गङ्गालहरी जो सुजन, कहैं-सुनैं श्रुति सार।
ताको गङ्गा देति है, सदा सुभग फल चार॥५६॥

प्रबोध-पचासा

कवित्त

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत, पै
पावत न पार जा अनंत गुनपूरे को।
कहै 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काजे करि देत जन-जाचक जरूरे को॥
चंद की छटान-जुत पन्नग-फटान-जुत,
मुकुट विराजै जटाजूटन के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैयें फल चारि फूल एक दै धतूरे को ॥१॥

सवैया

राम को नाम जपौ निसि-वासर, राम ही को इक आसरो भारो।
भूलो न भूल को भीरन में, 'पदमाकर' चाहि चितौनिकौ चारो।
ज्यों जल में जलजात के पात, रहै जगमें त्यों जहान तें न्यारो।
आपने-सो सुख औ दुख दौरि जु और को देखैसु देखन हारो ॥२॥

भूख लगें तब देत है भोजन, प्यास लगै तो पियावन पाने।
त्यों 'पदमाकर' पीर हरै को, सुवीर वड़े विरदैत बखाने।
है हम ही में हमारो महाप्रभु राम, इतै पै न मैं पहिचाने।
जैसे विचित्र सुपुत्रन् में लिखे बेदन भेद न पुस्तक जाने ॥३॥

भोग में रोग वियोग सँयोग में, योग में काय-कलेस कमायो।
त्यों 'पद्माकर' वेद-पुरान पढ्यो, पढ़ि कै बहु वाद बढ़ायो।
दूनी दुरास में दास भयो पै कहूँ विसराम को धाम न पायो।
कायो गमायो सु ऐस ही जीवन, हाय मैं राम को नाम न गायो।

या जग जानकी-जीवन को जस क्यों इक आनन गाई अघैये।
त्यों 'पद्माकर' मारग हैं बहु, द्वै पद पाई किते-किते जैये।
नाम अनंत अनंत कहे, ते कहे न परैं कहि काहि जतैये।
राम की रूरी कथा सुनिवे को करोरन कान कहो कहाँ पैये ॥५॥

कवित्त

आनँद के कंद जग ज्यावत जगतबृंद
दसरथ-नंद के निवाहेई निवहिये
कहै 'पद्माकर' पवित्र पन पालिवे कों,
चौरे चक्रपानि के चरित्रन को चहिये ॥
अवधविहारी के विनोदन में वीधि वीधि,
गीध गुह गीधे के गुनानुवाद गहिये।
रैन-दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ।६।

सवैया

द्यौस को रात करै जो चहै, अरु रातिहू को करि द्यौस दिखावै।
त्यों 'पद्माकर' सीलको सिंधु, पिपीलिका के बल फील फिरावै।
यों समरत्थ तनै दसरत्थ को सोई करै जो कछू मन भावै।
चाहै सुमेरु की राई करै, रचि राई को चाहै सुमेरु बनावै ॥७॥

मीठी महा मिसिरी तें मनोहर, को कहै कंदकलान के तैसो।
त्यों 'पद्माकर' प्यारो पियूष तें, कामद कामदुधान के ऐसो।
सीतल स्वाद सिरै सव तें सुचि है जल गंग-तरंग कौ जैसो।
क्यों न कहै मुख पाँचहु सों, सिब साँचई रामको नाम है ऐसो॥८॥

कवित्त

आवत हू जात खात खेलत खुलत गात,
छींकत छकात चुपचाप ह्वै न रहिये।
कहै 'पद्माकर' परे हू परभात, प्रेम
पागत परात परमातमा न जहिये॥

बैठत उठत जात जागत जँभात मुख,
सोवत हू सापने न औरे नाथ नहिये।
रैन-दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।९।

आयो मन हाथ तब आइवो रह्यो न कछू
भायो गुरु-ज्ञान फेरि भाइवो कहा रह्यो।
कहै 'पद्माकर' सुगंध की तरंग जैसे,
पायो सतसंग फेरि पाइबो कहा रह्यो॥

दान-बल बान-बल विविध वितान-बल,
छायो जस-पुंज फेरि छाइवो कहा रह्यो।
ध्यायो रामरूप तब ध्याइवो रह्यो न कछु,
गायो रामनाम तब गाइवो कहा रह्यो।१०।

आस-बस बास-बस विविध विलास-बस,
बासना बढ़ी को सुर-त्रासना-लौं हरिहौ।
कहै 'पद्माकर' त्यों अधम अजामिल-लौं,
औगुन हमारे गुन मान ही तौ धरिहौ॥

गुह पर गीध पर गनिका गयंद पर,
जाही ढार ढरे तव ताही ढार ढरिहौ।
ह्वै रहौं तिहारे चरनन हीं को चेरो कहूँ,
ऐसो मन मेरो कब मेरे राम करिहौ॥११॥

सवैया

और की औरै कथा है कछू, गुन-औगुन मेरे न और गनीजौ।
कानन दै चतुरानन या 'पद्माकर' की बिनती सुनि लीजौ।
एक यहै वर माँगत हौं, वर दूजो विरंचि न भूलि हू दीजौ।
राम को कोऊ गुलाम कहै, ता गुलाम को मोहि तिलाम लिखीजौ॥१२॥

कवित्त

औगुन अनंत खरदूषन-लौं दोषवन्त,
तुच्छ त्रिसिरा-लौं जा को एक हू न जस है।
कहै 'पद्माकर' कबंध-लौं मदंध महा-
पापी हौं मरीच लौं न दाया को दरस है।

मंथरा-सी कूटनी कुपंथी पंथ-पाहन-लौं,
बालि हू लौं विषई न जान्यौं और रस है।
ब्याध हू लौं बधिक विराध-लौं विरोधी राम,
एते पै न तारौ हमारौ कहा बस है॥१३॥

उक्ति अनेक ही पै एक हू कही न परै,
टेक ही हमारी केकई हू तें कठिन है।
कहै 'पद्माकर' न छाया है छमा की ऐसी,
काया कलिं क्रोह मोह माया की कठिन है॥
या तें-गुह-गीध-लौं सु वीधियो मोसों राम,
मेरी गति घोर या कठोर कमठिन है।
लंकगढ़ तोरिवे तें रावन सों रोरिवे तें,
मोहि भवबंधन तें छोरिवो कठिन है॥१४॥

व्याध हू तें विहद असाधु हौं अजामिल तें,
ग्राह तें गुनाहीं कहौ तिन में गनाओगे।
स्यौरी हौं न सुद्र हौं न केवट कहूँ को त्यौं न,
गौतमी तिया हौं जा पै पग धरि आओगे॥
राम सों कहत 'पद्माकर' पुकारि, तुम
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥१५॥

ए रे जड़ जीव जानि रागु वेद-भेद यहै,
सुमृति पुरान राखी यहै ठहराय है।
कहै 'पदमाकर' सु माया-परपंचन को,
पेखि, परपंच पेखने को सब भाय है॥
या तें भजु दसरथ-नंद रामचंदजू को,
आनँद को कंद कौसलेस रघुराय है।
जा दिना परैगो काम जम के जसूसन सों,
ता दिना तिहारे काम राम नाम आय है॥१६॥

कुटिल कुबुद्धि कुल कायर कलंकी सुद्र,
निपट असुद्ध तऊ हरषत परे।
कहै 'पदमाकर' विरोध-अवरोध-वस,
क्रोध-वस ह्वै कै कहूँ काहूँ सों न त्यों परै॥
औरन उदास करि पाँचन निरास करि
त्रास जम-जातना को ल्यावत न ज्यों परै।
अधम-उधारन हमारे रामचंद तुम,
साँचे बिरदैत या तें काँचे हम क्यों परै॥१७॥

जोग जप संध्या साधु साधन सवैई तजे,
कीन्हें अपराध ते अगाध मनभावते।
तेते तजि औगुन अनंत 'पदमाकर' तौ,
कौन गुन लै कै महाराजहिं रिझावते॥
जैसे अब तैसे पै तिहारे वड़े काम के हैं,
नाहीं तो न एते वैन कवहूँ सुनावते।
पावते न मो-सो जो पै अधम कहूँ, तो राम,
कैसे तुम अधम-उधारन कहावते॥१८॥

एकन सों वैर करि, प्रीति करि एकन सों,
एकन सों वैर है न प्रीति कछू गाढ़ी है।
कहै 'पदमाकर' न होत चितचाही बात,
बात करिवे को अनचाही मीच ठाढ़ी है॥
एते पै न चेत फेरि केते वाँध वाँधत हैं,
दंत लागे हिलन सपेद भई दाढ़ी है।
बाढ़ी कहूँ राम की न भगति हिये में देखौ,
तृसना विसासिन या विलई-सी वाढ़ी है॥१९।

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवन हूँ,
भोग हू वियोग हू सँयोग हू अपार है।
कहै 'पद्माकर' इते पै और केते कहौं,
तिन को लख्यो न बेद हू में निरधार है॥
जानियत या तें रघुराय की कला को कहूँ,
काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है।
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर,
कौन जाने कौन को कहा होनहार है॥२०॥

प्रलै के पयोनिधि-लौं लहरें उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को।
भीर भरी झाँझरी बिलोकि मँझधार परी,
धीर न धरात 'पद्माकर' खेवैया को॥
कहा बार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहै, ऐसो,
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को॥२१॥

अपने पराये तें सोहाये भोग विंजन तें,
तो ही को जिमायो ता तें रसना पतीजियो।
कहै 'पद्माकर' ज्यों तेरिये कही मैं करी,
मेरी कही एक दिना एती मान लीजियो॥
आपनीयै जानि कै जवान तो सों जाँचत हौं,
बोलत बिलंब एक छिन कछु कीजियो।
जंगी जमराज के जसूसन सों काम परे,
रामई के नाम तू हरेई कहि दीजियो॥२२॥

आस-बस डोलत सु या कौ विसवास कहा,
साँस-बस बोलै मल-माँस ही को गोला है।
कहै 'पद्माकर' विचार छनभंगुर या,
पानी को-सो फेन जैसे फलक फफोला है॥
करम करोर पंचतत्वन बटोरा फेरि,
ठौर-ठौर जोला फेरि ठौर-ठौर पोला है।
छोड़ हरि-नाम नहीं पैहै बिसराम अरे,
निपट निकाम तन चाम ही को चोला है॥२३॥

जाट हू धना के सदना के सुद्ध साथी भये,
हाथी ही उबारत न बार मन लाये हैं।
कहै 'पद्माकर' "कहे न परै तेते जग,
जेते कपि-रिच्छन के विरद बढ़ाये हैं॥
साधन के हेत पन पाल्यो प्रह्लाद हू को,
याद करौ जाय सेवरी के बेर खाये हैं।
राखत हैं राखैंगे रखैया रघुनाथ जन,
आपन की बात सदा राखतेई आये हैं॥२४॥

देखौ दिच्छ-दिच्छन प्रतच्छ छिन पच्छिन के,
लच्छन समच्छ भय भच्छिबो करत हैं।
कहै 'पद्माकर' निपच्छन के पच्छ-हित,
पच्छि तजि लच्छि तजि गच्छिबो करत हैं॥
सुद्ध सहसच्छ के विपच्छिन के धच्छिबे को,
मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं।
लच्छिबो करत जस यच्छिबो करत जन,
आपने को राम सदा रच्छिबो करत हैं॥२५॥

शोका की धुजा है और रुजा है महादोषन की,
मल की मँजूषी मोह-माया की निसानी है।
कहै 'पद्माकर' सु पानी-भरी खाल- ता के,
खातिर खराब कत होत अभिमानी है॥
राखे रघुराज के रहै तौ रहै पानी,
नतौ जंगी जमराज ही के हाथन विकानी है।
जौ ही लगि पानी तौ लौं देह-सी दिखानी,
फेरि पानी गये खारिज पखाल ज्यों पुरानी है॥२६॥

आवत गलानि जो वखान करौं ज्यादा, यह,
मादा मल मूत और मज्जा की सलीती है।
कहै 'पद्माकर' जरा तौ जागि भीजी, तव
छीजी दिन-रैन जैसे रेनु ही की भीती है॥
सीतापति राम के सनेह-वस वीती जो पै,
तौ तो दिव्य देह जम-जातना तें जीती है।
रीती रामनाम तें रही जो विन काम तौ, या
खारिज खराब हाल खाल की खलीती है॥२७॥

गोदावरी गोकरन गंगा हू गया हू यह,
येही कोटि तीरथ किये को लाभ लहिये।
कहै 'पद्माकर' सु ज्ञान यहै ध्यान यहै,
यहै सुख-खान सरवस्व मानि रहिये॥
ये ही जप ये ही तप ये ही जज्ञ जोग यहै,
ये ही भव-रोग को उपाव एक चहिये।
रैनदिन आठौ जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥२८॥

सापहर पापहर कलि के कलापहर,
तीखन त्रितापहर तारक तरैया को।
कहै 'पदमाकर' त्यों प्रकट प्रकासमान,
पोषक पियूष-ऐसो जैसो कामगैया को॥
मुख सुखदायक सहायक सवन सूधो,
सुलभ सरन्य सरनागत अवैया को।
मीठो भरि-कठवति परत न फीको नित,
नीको निरदोष नाम राम रघुरैया को ॥२६॥

सवैया

ये भवबाँधन बाँधिवे को सुख साधन ये ही सदा अभिलाखै।
त्यों 'पदमाकर' सालिगराम को, कै अरचा चरनोदक चाखै।
सुन्दर स्याम सरोरुह साँवरो, राम ही राम निरंतर भाखै।
देह धरे को यहै सुख है जु विदेहसुतापति में चित्त राखै॥३०॥

आसन आदि विलासन सों सुख साजि सिंहासन पै विसराम है।
त्यों 'पदमाकर' दीजियो भोग, विभूषन जो तुलसी-दल-दाम है।
या विधि औरहू कै अरचा, जपै कामद श्रीप्रभु के गुन गाम है।
पूजिये सालिगराम ही को नित, सालिगराम में राम को नाम है।३१।

कवित्त

काहे को वघंवर को ओढ़ि करौ आडंवर,
काहे को दिगंवर ह्वै दूव खाय रहिये।
कहै 'पदमाकर' त्यों काय के कलेस-हित,
सीकर सभीत सीत वात पाप सहिये॥

काहे को जपौगे जप काहे को तपौगे तप,
काहे को प्रपंच पंच पावक में दहिये।
रैन-दिन आठो जाम राम राम रामै राम;
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ॥३२॥

थंभन में थाँम-सो सुठाम सो सुदंभन में,
दीपक ललाम-सो अँधेरे-से दिगंत में।
कहै 'पदमाकर' गयल में विश्राम-सो,
सरोजन की दाम सो जो सरद समंत में।
सीतापति राम को सुनाम एक ऐसो ही है,
आनँद के आम-सो सु लागत वसन्त में।
पावस में घाम-सो सु ग्रीषम में सीत-ऐसो, सीत परे
घाम-सो हिमाम-सो हसंत में ॥३३॥

सवैया

मानुष को तन पाय अन्हाय अघाय पियौ किन गंग को पानी।
भाषत क्यों न भयो 'पदमाकर' राम ही राम रसायन बानी।
सारँगपानि के पावन सों, तजि के मन को कत होत गुमानी।
मोटी मुचन्ड महामतवारिन, मूड़ पै मीच फिरै मड़रानी ॥३४॥

और सबै सँग सापनो है, जग आपनो एक हितू रघुराया।
ताहि न भूलि हू भूलियो तू, 'पदमाकर' पेखनो पेख पराया।
नैन मुँदे पै जहाँ को तहाँ जकि-सी रहि जाति जमाति औ जाया।
माय चलाय कहौ क्यों चलै, चलै आपने संग न आपनी काया।३५।

कवित्त

काम-बस सूपनखा नाम गनिका-सी तरी-
क्रोधबस रावन तरयो जो लंक लाछेई।
कहै 'पद्‌माकर' बिमोहवस विप्र तरयो,
लोभवस लुब्धक तरयो सो बान-बाछेई ॥
और गीध गुह ग्राव ग्राह हैं, न गाए परैं,
तेते तरि-तरि गे न केते काछ काछेई।
या तें विधि कौन हूँ कहूँ जो रघुराज ही के
पाछेई परौगे तो तरौगे यार आछेई ॥३६॥

सवैया

या जगजीवन को है यहै फल, जो छल छाँड़ि भजै रघुराई।
सोधि कै सन्त महन्तन हूँ, 'पद्‌माकर' बात यहै ठहराई।
ह्वै रहै होनी प्रयास बिना अनहोनी न ह्वै सकै कोटि उपाई।
जो विधि भाल में लीक लिखी सो बढ़ाई बढ़ै न घटै न घटाई ॥३७॥

कवित्त

संभु तें न सूधो, डरै दूरि दुरगा तें, रहै
जाहि न तृषा है गहि गंगाजल पान की।
कहै 'पद्‌माकर' सुनी ना सठ सापनेहू,
भाखी बालमीक जो कथा है भगवान् की ॥
सीतापति-चरन-सरोज तें विमुख, सुख,
चाहत इतै पै माटी गाँठी अभिमान् की।
जैसे नर मूढ़ गाजरन की तुला पै चढ़ि,
आनन उठाय बाट हेरत बिमान की ॥३८॥

रिच्छन के बृन्द बली बन्दर बिलन्द तरि,
मोटे मोद-मन्दिर भे सुजस ललाम के।
कहै 'पदमाकर' सिला हू तरि सौरी तरि,
पाये पग-पंकज-पराग अभिराम के॥
गुह तरि गीध तरि गनिका गयन्द तरि,
केते तरि-तरि भे निवासी निज धाम के।
भारे भवसिंधु में उतारे दैनवारे अवै,
संभु के सँभारे हैं बरन राम नाम के ॥३६॥

जैसे जरा के जरा कहि जागत, जात हू में न रहै छवि छाजी॥
ज्यों कलिकाल के व्यालन तें, 'पदमाकर' भक्ति फिरै भ्रमि भाजी॥
त्यों मुख राम के नाम के लागत यों उठि जात कुपातक पाजी।
ज्यों छिन एक ही में छुटि जाति है, आतस के लगे आतसबाजी ॥४०॥

पेट की चौरे चपेट सही, परमारथ स्वारथ लागि बिगारे।
त्यों 'पदमाकर' भक्ति भजी, सुनि दंभ के द्रोह के दीह नगारे।
कौन के आसरे आस तजौं, सुधि लेत न क्यों दसरत्थ-दुलारे।
जोग रु जज्ञ जपोतप-जाल, बिहाल परे कलिकाल के मारे ॥४१॥

यों मन लालची लालच में लगि लोभ-तरंगन में अवगाह्यो।
त्यों 'पदमाकर' गेह के देह के, नेह के काज न काहि सराह्यो।
पाप किये पैं न पातकी पावन जानि कै राम को नेम निवाह्यो।
चाह्यो भयो न कछू कबहूँ, जमराज हू सों बृथा बैर बिसाह्यो ॥४२॥

पातकीपावन हौ तुम राम, रहैं हम पातक में मदमाते।
दीन के बन्धु दयाल इकै तुम हौ, हम दीनदसान हीं पाते।
पालक हौ तुम बिप्रन के, हम हूँ 'पदमाकर' बिप्र सुहाते।
या तें रटौं न हटौं प्रभु-पास तें, हैं तुम तें हम तें बहु नाते ॥४३॥

रे दिल बेगरजी दरजी उर डारि भजै न क्यों तैं सियना है।
त्यों 'पद्माकर' देह के कारन, खानैं खुराक पियो पियना है।
नैन मुदे पै न फेर फितूर को टंच, न टोभ कछू छियना है।
पेट के वेट बेगारहि में, जब लौं जियना तब लौं सियना है ।।४४।।

बैस बिसासिनि जाति बही, उमही छिन-ही-छिन गंग की धार सी।
त्यों 'पद्माकर' पेखनि या, अजहूँ न भजै दसरत्थ-कुमार सी।
बार पके थके अंग सबै मढ़ि मीच गरेई परी हर-हार-सी।
देखै दसा किन आपनी तू, अब हाथ के कंगन को कहा आरसी।४५।

पापी अजामिल पार कियो, जेहि नाम लियो सुत ही नारायन।
त्यों 'पद्माकर' लात लगे परे विप्र हू के पग चौगुने चायन।
को अस दीनदयाल भयो[२] दसरत्थ के लाल-से सूधे सुभायन।
दौरे गयंद उबारिबे को, प्रभु बाहनै छोड़ि उबाहनैं पायन ।।४६।।

कवित्त

भाये 'पद्माकर' न तैसे भाउ जज्ञन के,
जैसे भगवानै भीलनी के फल भाये हैं।
भोजन की सामा सत्यभामा की भुलाई भलें,
दुखी वा सुदामा के सु चाउर चबाये हैं।।
छप्पन सुभोग दुरजोधन के त्यागि करि,
आसा गहि बेग तें विदुर-घर आये हैं।
धारा धाये फिरत वृथा पै नेम-नीरधि में-
पाये जिन राम तिन प्रेम ही सों पाये हैं ।।४७।।

१—पाठान्तर—त्यों 'पद्माकर' कै प्रनिपात जु लात लगे पर विप्र के पायन। २. बियो।

कीन्हीं तुम सेत मैं असेत कृति कीन्हीं, तुम
धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है।
कहै 'पदमाकर' अखाँग्यो तुम लंकपति,
हम हूँ कलंकपति ह्वैबोई अखाँग्यो है॥
हम तुम हूँ तें अति करम-करैया बड़े,
अंकनि गने पै यों गुमान जिय जाग्यो है।
खीझियो न मो पै मुख लागत भले ही राम,
नाम हूँ तिहारो जो हमारे मुख लाग्यो है।४८।

जा दिन जनम देत ता दिन तें आगे करे,
पय को प्रसव जोग जीवन के हेत है।
कहै 'पदमाकर' अमीर उमराव वा के,
एक ही सो गरवी गरीब स्याम सेत है॥
हम करतूती बड़े किम्मती कहाए, जो या
भाषत भरम सो तौ अधिक अचेत है।
ज्ञान करि देखौ भये काहे को अजान, राम
करुनानिधान सो निदान सुधि लेत है॥४६॥

सवैया

को किहि को सुत को किहि को पितु को किहि को पति कौन की को ती।
कौन को को जग ठाकुर चाकर, को 'पदमाकर' कौन को गोती।
जानकी-जीवन जानि यहै, तजि दे तू सबै धन धाम औ धोती।
हौं तौ न लोटतो लोभ-लपेट में पेट की जो पै चपेट न होती॥५०॥

कवित्त

सुखद सुकंठ-सखा साहिब-सरन्य सुचि,
सूधे सत्यसंध के प्रबंधन को गहिये।
कहै 'पद्माकर' कलेस-हर कौसलेस,
कामद कबंध-रिपु ही को लै उमहिये।
राजिवनयन रघुराज राजा राजाधिप,
रूप-रतनाकर को राजी राखि रहिये।
रैन-दिन आठोजाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ॥५१॥

———

३

षड्ऋतु-वर्णन

वसंत—(कवित्त)

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पगंत है॥
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है॥ १॥

और भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर-भीर,
और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये।
कहै 'पद्माकर' सु औरै भाँति गलियान,
छलिया छबीले छैल और छवि छ्वै गये।
औरै भाँति विहँग-समाज में अवाज होति,
ऐसे ऋतुराज के न आज दिन द्वै गये।
औरै रस औरै रीति और राग औरै रंग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये॥ ३५॥

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुज हैं।
कहै 'पद्माकर' बिसासी या बसंत के,
सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं॥
ऊधो यह सूधो सो सँदेसो कहि दीजो भले,
हरि सौं, हमारे ह्याँ न फूले बन-कुंज हैं।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं॥२॥

ए ब्रजचंद चलौ किन वाँ ब्रज लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।
त्यों 'पद्माकर' पेखौ पलासन पावक-सी मनो फूकन लागीं॥
वै ब्रजवारी बिचारी वधू वनवारी-हिये लों सु हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु कुहू-कुहू कैलिया कूकन लागीं॥४॥

ग्रीष्म—(कवित्त)

फहरै फुहार-नीर, नहर नदी-सी बहै,
छहरै छवीन छाम छीटिन की छाटी हैं।
कहै 'पद्माकर' त्यों जेठ की जलाकैं तहाँ,
पावैं क्यों प्रवेस बेस बेलिन की वाटी हैं॥
बारहु दरीन बीच बार हू तरफ तैसी,
बरफ बिछाई ता पै सीतल-सु पाटी हैं।
गजक अँगूर को अँगूर सों उचौहैं कुच,
आसव अँगूर को अँगूर ही की टाटी हैं॥५॥

पावस—

मल्लिकन मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै 'पद्माकर' त्यों नदन नदीन नित,
नागर नवेलिन की नजर नसा की है॥
दौरत दरेरौ देत दादुर सु दुंदै दीह,
दामिनी दमंकत दिसान में दसा की है।
बद्दलनि बुंदनि बिलोकौ बगुलान बाग,
बंगलान बेलिन बहार बरषा की है॥६॥

चंचला चमाकैं चहूँ ओरन तें चाह-भरी,
चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लोनी लता,
लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरौं धीर बीर त्रिविध समीरैं तन,
तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री।
घुमड़ि घमंड घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री॥७॥

बरसत मेह नेह सरसत अंग-अंग,
झरसत देह जैसे जरत जवासो है।
कहै 'पद्माकर' कलिंदी के कदंबन पै,
मधुपनि कीन्हों आइ महत मवासो है॥

ऊधौ यह ऊधम जताइ दीजौ मोहन कों,
ब्रज को सुबासो भयो अगिन-अवासो है।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो,
काहू विथित बियोगिनी के प्रानन को प्यासो है ॥८॥

शरद्—

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
वृन्दावन बीथिन वहार वंसीवट पै।
कहै 'पद्माकर' अखंड रासमंडल पै,
मंडित उमंडित महा कालिंदी के तट पै॥
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भली छाई यह सरद-जुन्हाई; जिहि
पाई छवि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै॥९॥

खनक चुरीन की त्यों ठनक मृदंगन की,
रुनुक-झुनुक सुर नूपर के जाल को।
कहै 'पद्माकर' त्यौं वाँसुरी की धुनि मिलि,
रह्यो वँधि सरस सनाको एक ताल को॥
देखतै बनत पै न कहत बनै री कछू,
विविध विलास यों हुलास यह ख्याल को।
चंद छबिरास चाँदनी को परकास, राधिका
को मंदहास, रासमंडल गोपाल को॥१०॥

हेमंत—

अगर की धूप मृगमद की सुगंध वर,
बसन बिसाल जाल अंग ढाँकियतु है।
कहै 'पदमाकर' सु पौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उमँगि छाकियतु है॥
भोग औ सँयोग हित सुरत हिमंत ही में,
एते और सुखद सुहाय बाकियतु है।
तान की तरंग तरुनापन तरनि-तेज,
तेल तूल तरुनि तमोल ताकियतु है॥११॥

शिशिर—

गुलगुली गिलमैं गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहै 'पदमाकर' त्यों गजक गिजा हैं सजी,
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिन के अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाल चित्रसाला हैं॥१२॥

———

रस-वर्णन

शृङ्गार-रस

जैसी छवि स्याम की पगी है तेरी आँखिन में,
ऐसी छवि तेरी स्याम-आँखिन पगी रहै।
कहै 'पद्माकर' ज्यों तान में पगी है त्यों ही,
तेरी मुसकानि कान्ह-प्रान में पगी रहै॥
धीर धर धीर धर कीरति किसोरी, भई
लगन इतै-उतै बराबर जगी रहै।
जैसी रट तोहि लागी माधव को राधे वैसी,
राधे-राधे-राधे रट माधवै लगी रहै॥१॥

पिय-आगम तें प्रथम ही, करि बैठी तिय मान,
कब धौं आइ मनाइ हैं, यही रही धरि ध्यान॥२॥

हौं हूँ गई जान तित आइगो कहूँ तें कान्ह,
आनि वनितान हूँ को झपकि झलौ गयो।
कहै 'पद्माकर' अनंग की उमंगन सों,
अंग-अंग मेरे भरि नेह को छलौ गयो॥
ठानि ब्रजठाकुर ठगोरिन की ठेलाठेल,
मेला के मझार हित-हेला कै भलौ गयो।
छाह छ्वै छला छ्वै छिगुनी छ्वैछरा छोरन छ्वै,
छलिया छबीलो छैल छातौ छ्वै चलौ गयो॥३॥

चोरिन-गोरिन में मिल कै इतै आई ही हाल गुवाल कहाँ की।
को न बिलोकि रह्यो 'पद्माकर' वा तिय की अवलोकनि बाँकी।
बीर अबीर की धूँधुरि में कछु फेर-सो कै मुख फेरि की झाँकी।
कै गई काटि करेजन के कतरे-कतरे पतरे करिहाँ की ॥४॥

गुनवारे गोपाल के करि गुन-गननि बखान।
इक अवधिहि के आसरे, राखति राधा प्रान ॥५॥

बिरह-बिब अकुलाइ उर, त्यों पुनि कछु न सुहाइ।
चित न लगत कहुँ, कैस हू सो उद्वेग बनाइ ॥६॥

घर न सुहात ना सुहात बन बाहिर हू,
बाग ना सुहात जेखुलास खुसबोही सों।
कहै 'पद्माकर' घनेरे धन-धाम त्यों ही,
चंद न सुहात चाँदनी हूँ जोग जोही सों॥
साँझ न सुहात ना सुहात दिन माँझ कछू,
व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सों।
राति न सुहात ना सुहात परभात आली,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सों ॥७॥

आम को कहत अमिली है अमिली को आम,
आक ही अनारन को आँकिबो करति है।
कहै 'पद्माकर' तमालन को ताल कहै,
आलनि तमाल कहि ताकिबो करति है॥
'कान्है-कान्ह' कहूँ कहि कदली-कदंबन को,
भेंटि परिरंभन में छाकिबो करति है।
साँवरे जू रावरे यों बिरह बिकानी बाल,
बन-बन बावरी-लौं ताकिबो करति है ॥८॥

प्रानन के प्यारे तन-ताप के हरनहारे,
नन्द के दुलारे ब्रजवारे उमहत हैं।
कहै 'पदमाकर' उरूजे उर-अन्तर यों,
अंतर चहैं हूँ जे न अंतर चहत हैं॥
नैननि बसे हैं अङ्ग-अङ्ग हुलसे हैं रोम—
रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं।
ऊधो वे गोविंद कोऊ और मथुरा में, यहाँ
मेरे तो गोविंद मोहिं-मोहिं में रहत हैं ॥६॥

हास्य-रस

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह में।
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखैं सो हँसेई तहाँ राह में॥
मगन भयेऊ हँसै नगन महेस ठाढ़े,
औरै हँसे येऊ हँसि-हँसि कै उमाह में।
सीस पर गङ्गा हँसै भुजन भुजंगा हँसै,
हास ही कौ दंगा भयो नंगा के विवाह में ॥१०॥

कर मूसर नाचत नगन, लखि हलधर को स्वाँग।
हँसि-हँसि गोपी फिरि हँसै, मनहुँ पिये-सी भाँग ॥११॥

करुण रस

आँसुन अन्हाय हाय-हाय कै कहत सब,
औधपुरवासी कै कहा यों दुःख दाहिये।
कहै 'पदमाकर' जलूस युवराजी को सु,
ऐसो धनी है न जाय जाके सीस बाहिये॥

सुत के पयान दसरथ ने तजे जो प्रान,
बाढ्यो सोकसिंधु सो कहाँ लौं अवगाहिये।
मूढ मंथरा के कहे बन को जु भेजे राम,
ऐसी यह बात कैकई को तो न चाहिये ॥१२॥

राम भरत मुख मरन सुनि, दसरथ, के वन माँह।
महि परि भे रोदत उचरि, 'हा पितु हा नरनाह' ॥१३॥

रौद्र-रस

वारि टारि डारौं कुम्भकर्नहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यों बल-अनंत हौं।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूट ही को ढाहि डारौं,
डारत करेई यातुधानन को अंत हौं।
अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ है उचारौं, इमि
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं, रावन को तौ मैं हनुमंत हौं ॥१४॥

वीर-रस

सोहैं अत्र ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की,
लंगर लंगूर उच्च ओज के अतंका में।
कहै 'पदमाकर' त्यों हुँकरत फुंकरत,
फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में॥

आगे रघुवीर कै समीर के तनै के संग,
तारी दै तड़ाक तड़ातड़ के तमंका में।
संका दै दसानन को डंका दै सुबंका वीर,
डंका दै विजै को कपि कूदि परयो लंका में ॥१५॥

जाही ओर सोर परै घोर घन ताही ओर,
जोर जंग जालिम को जाहिर दिखात है।
कहै 'पदमाकर' अरीन की अवाई पर,
साहब सवाई की ललाई लहरात है॥
परिध प्रचंड चमू हरषित हाथी पर,
देखत बनत सिंह माधव को गात है।
उद्धत प्रसिद्ध जुद्ध जीति ही के सौदा-हित,
रौदा ठनकारि तन हौदा में न मात है ॥१६॥

मिले सुदामा सों जु करि, समाधान सनमान।
पग पलोटि मग श्रम हरेउ, ये प्रभु दयानिधान ॥१७॥

बकसि वितुंड दये झुण्डन के झुण्ड रिपु—
मुंडन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को।
कहै 'पदमाकर' करोरन को कोष दये,
षोडस हू दीन्हे महादान अधिकारी को॥
ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये,
अन्न-जल दीन्हे जगती के जीवधारी को॥
दाता जयसिंह दोय बात तौ न दीनी कहूँ,
बैरिन को पीठि और डीठि परनारी को ॥१८॥

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
कहै 'पदमाकर' सुहेममय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना।
गंज-गज-बकस महीप रघुनाथराव,
याहि गज धोके कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना ॥१६॥

तृन के समान धन-धाम राज त्याग करि,
पाल्यो पितु-बचन जो जानत जनैया है।
कहै 'पदमाकर' बिवेक ही को बानो बीच,
साँचो सत्यवीर धीर धीरज धरैया है॥
सुमृति पुरान वेद आगम कह्यो जो पंथ
आचरत सोई सुद्ध करम करैया है।
मोद-मति-मंदर पुरंदर मही को धन्य,
धरम धुरंधर हमारो रघुरैया है ॥२०॥

धारि जटा वलकल भरत, गन्यौ न दुख तजि राज।
भे पूजत प्रभु पादुकनि, परम धरम के काज ॥२१॥

भयानक-रस

झलकत आवै झुण्ड झिलम-झलानि झप्यो,
तमकत आवै तेगवाही औ सिलाही है।
कहै 'पदमाकर' त्यों दुंदुभी-धुकार सनि,
अकबक बोलै यों गनीम औ गुनाही है॥

माधव को लाल काल हू तें विकराल, दल
साजि धायो ए दई दई धौं कहा चाही है।
कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु,
का पै यों परैया भयो गजब इलाही है ॥२२॥

ज्वाला की जलन सी जलाक जंग जालन की,
जोर की जमा है जोम जुलुम जिलाहे की।
कहै 'पद्माकर' सु रहियो बचाये जग,
जालिम जगतसिंह रंग अवगाहे की॥
दौरि दावादारन पै द्वार सौ दिवाकर की,
दामिनी दमंकनि दलेल दिग दाहे की।
काल की कुटुम्बिनि कला है कुल्लि कालिका की,
कहर की कुन्त की नजर कछवाहे की ॥२३॥

भुवन धुन्धुरित-धूलि धूलि धुन्धुरित सु धूम हु।
पद्माकर परतच्छ स्वच्छ लखि परत न भूम हु।
भग्गत अति परि पग्ग मग्ग लग्गत अँग-अंगनि।
तहँ प्रताप पृथिपाल ख्याल खेलत खुलि खग्गनि॥
तहँ तबहिं तोपि तुंगनि तड़पि तंतड़ान तेगनि तड़कि।
धुकि धड़-धड़-धड़-धड़-धड़ा-धड़-धड़धड़ात्त तद्धा धड़कि॥२४॥

एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराय।
विकल बटोही बीच ही, परो मूरछा खाय॥२५॥

वीभत्स-रस

पढ़त मंत्र अरु यंत्र, अंत्र लीलत इमि जुग्गिनि
मनहुँ मिलत मदमत्त, गरुड़-तिय अरुन उरग्गिनि।

हरबरात हरषात, प्रथम परसत पलपंगत।
जहँ प्रताप जिति जंग, रंग अँग-अँग उमंगत॥
जहँ'पद्माकर' उतपत्ति अति, रन रक्ति-नद्दिथ वहत।
चख चखित चित्त चरबीन चुभि, चकच्चकाइ चंडी रहत॥२६

रिपु-अंत्रन की कुंडली, करि जुग्गिनि जु चवाति।
पीवहि में पागी मनो, जुवति जलेबी खाति॥२७॥

अद्भुत रस

गोपी ग्वाल माली जुरे आपुस में कहैं आली,
कोऊ यसुदा के औतरथो इन्द्रजाली है।
कहै 'पद्माकर' करै को यों उताली जा पै,
रहन न पावै कहूँ एकौ फन खाली है॥
देखै देवताली भई विधि के खुसाली, कूदि
किलकति काली हेरि हँसत कपाली है।
जनम कौ चाली ए री अद्भुत दै ख्याली, आजु
काली की फनाली पै नचत बनमाली है॥२८॥

मुरली वजाइ तान गाय मुसकाय मंद,
लटकि-लटकि साई नृत्य में निरत है।
कहै 'पद्माकर' गोविंद के उछाह अहि-
विष को प्रवाह प्रतिमुख ह्वै झिरत है।
ऐसो फैल परत फुसकारत ही में मानो,
तारन को वृन्द फूतकारन गिरत है।
कोप करि जौ लौं एक फन फुफकावै काली,
तौ लौं बनमाली सोऊ फन पै फिरत है॥२९॥

सात दिन सात राति करि उतपात महा,
मारुत झकोरै तरु तोरै दीह दुख में।
कहै 'पदमाकर' करी त्यों धूम धारन हूँ,
एते पै न कान्ह कहूँ आयो रोष-रुख में॥
छोर छिगुनी के छत्र-ऐसो गिरि छाइ राख्यो,
ताके तरे गाय गोप गोपी खरी सुख में।
देखि-देखि मेघन की सेन अकुलानी, रह्यो,
सिंधु में न पानी अरु पानी इंदु मुख में॥३०॥

घन बरषत कर पर धरयो, गिरि गिरिधर निरसंक।
अजब गोपसुत चरित लखि, सुरपति भयो ससंक॥३१॥

शांत-रस

बैठि सदा सतसंगहि में विष मानि विषै-रस कीर्ति सदा हीं।
यों 'पदमाकर' झूठ जितो जग जानि सुज्ञानहिं के अवगाहीं॥
नाक की नोंक में डीठि दिये नित चाहै न चीज कहूँ चित-चाहीं।
संतत संत-सिरोमनि है धन है धन वे जन वेपरवाहीं॥३२॥

तन वितान रवि ससि दियो, फल भख सलिल-प्रवाह।
अवनि सेज पंखा पवन, अव न कछू परवाह॥३३॥

सब हित तें बिरकत रहत, कछू न संका त्रास।
बिहित करत सुन हित समुझि, सिसुवत जे हरिदास॥३४॥

हिम्मत बहादुर यशोगान

मंगलाचरण

(छप्पय)

जय जय जय व्रज-जलधि चन्द आनन्द बढ़ावन।
जय जय जय नँदनंद, जगत-दुख-दंद-घटावन ॥
जय जय केसी - कंस - बच्छ-वक-रच्छस - दंडन।
जय जय गिरवर-धरन, मान मघवा मन-खंडन ॥
जय 'पद्माकर' भारथ समर, पारथ-सखय'रु सिद्ध धनि।
नित नृप अनूप गिरि भूप कहँ, विजय देहु जदुबंस-मनि ॥

हिम्मत बहादुर यशोगान

(हरिगीतिका)

नित देहु जय जदुवंस-मनि-अवतंस नौऊ खंड को।
गिरिराज - इद्र - नरिंद-नंदन, भवन तेज-अखंड को ॥
पृथु-रित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये विरुदावली, हिम्मत बहादुर भूप की ॥ १ ॥

नृप धीर वीर वली चढ़यौ, सजि सेन समर सुखेल की।
सुनि बंव वीरन के बढ़ी, हिय हौस बर बगमेल की ॥
पृथु-रित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये विरुदावली, हिम्मत बहादुर भूप की ॥ २ ॥

करि खग्ग दग्ग उदग्ग अति, अरि-वग्ग आये उमड़ि कै।
गज-घटन माहिं महाबली, घालत हथ्यारनि घुमड़ि कै॥
पृथु-रित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
वर बरनिये विरुदावली, हिम्मत बहादुर भूप की॥३॥

(त्रिभंगी)

तहँ दुहुँ दल उमड़े, घन-सम घुमड़े, झुकि-झुकि झुमड़े, जोर-भरे।
तकि तबल तमंके, हिम्मत हंके, बीर बमंके, रन उभरे॥
बोलत रन करखा, बाढ़त हरषा, बानन बरषा होन लगी।
उलछारत सेलैं, अरि गन ठेलैं, सोननि पेलैं, रारि जगी॥४॥

बंदी-जन बुल्ले, रोसन खुल्ले, डग-डग डुल्ले, कादर हैं।
धौंसा-धुनि गज्जे, दुहुँ दिसि बज्जे सुनि धुनि लज्जे, बादर हैं॥
नीसान सु फहरैं, इत-उत छहरैं, पावक-लहरैं-सी लगतीं।
छुवती नकि नाका, मनहु सलाका, धुजा पताका, नभ जगतीं॥५॥

कढ़ि कोटनवारे, बीर हँकारे, न्यारे-न्यारे अभिरि परे।
किरवाननि झारैं, सुभट बिदारैं, नेकु न हारैं, रोष-भरे॥
कानन लौं तानैं, गहि कम्मानैं, अरिन निसानैं सिर घालैं।
जुधे अति पैठैं, मुच्छनि ऐठैं, भुजनि उमैठैं, गहि ढालैं॥६॥

शत्रन की मूकैं, घालि न चूकैं, दै-दै कूकैं, कूदि परे।
गहि गरदन पटकैं, नेकु त भटकैं, झुकि-झुकि झटकैं उमँग भरे॥
रन करत अड़ंगे, सुभट उमंगे, बैरिन बंगे, करि झपटैं।
सीसन की टक्कर, लेत उटक्कर, घालत छक्कर, लरि लपटैं॥७॥

तहँ हत्था-हत्थी, मत्था-मत्थी, लत्था-पत्थी, माचि रही।
काटैं कर कट-कट, बिकट सुभट-भट, कासों खटपट जाति कही॥
गहि कठिन कटारी, पेलत न्यारी, रुधिर-पनारी, बमकि बहैं।
खंजर खिन खनकैं, ठेलत ठनकैं, तन सनि-सनि कै, हिलगि रहैं॥८॥

गहि-गहि पिसकब्जैं, मरमनि गब्जैं, तकि-तकि नब्जैं, काटत हैं।
कम्मर तें छूरे, काटत पूरे, रिपु-तन रूरे, काटत हैं॥
करि धक्का-धक्की, हक्का-हक्की ढक्का-ढक्की, मुदित मची।
घनघोर घुमंडी, रारि उमंडी, किलकत चंडी, निरखि नची॥६॥

एकै गहि भाले, करि मुख लाले, सुभट उताले, घालत हैं।
तोरत रिपु-ताले, आले-आले, रुधिर-पनाले, चालत हैं॥
झारत असि जुरि जे, बीरनि डर जे, पुरजे-पुरजे कोटि करैं।
हथियारनि सूटैं, नेकु न हूटैं, खल-दल कूटैं, लपटि लरैं॥१०॥

तहँ ढुक्का-ढुक्की, मुक्का-मुक्की, डुक्का-डुक्की, होन लगी।
रन इक्का-इक्की, झिक्का-झिक्की, फिक्का-फिक्की, जोर जगी॥
काटत चिलता हैं, इमि असि बाहैं, तिनहिं सराहैं, बीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमें, रिपु रन बिलमैं, सोचत दिल में, खड़े-खड़े॥११॥

ढालन के ढक्के, लागत पक्के, इत-उत थक्के, थरकत हैं।
इक-इक्कनि टक्के, बँधे झमक्के, तननि तमक्के, तरकत हैं॥
ललकत फिरि लपटे, छत्तिन छपटे, करि अरि चपटे, पेरत हैं।
भट भुजनि उखारत, छिति पर डारत, हँसि हुड़कारत, हेरत हैं॥१२॥

ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि, चाउ-भरे।
करि खल-दल खंडन, बैरि बिहंडन, नौऊ खंडन, सुजस करे॥
दस्ताने करि-करि, धीरज धरि-धरि, जुद्ध उभरि-भरि, हंकत हैं।
पैठत दुरदन में, रोषित रन में, नेकु न मन में, संकत हैं॥१३॥

निकसीं तहँ खग्गैं, उमड़ उमग्गैं, जगमग जग्गैं, दुहुँ दल मैं।
भाँतिन-भाँतिन की, वहु जातिन की, अरि-पाँतिन की, करि कलमैं॥
तह कढीं मगरबी, अरि-गन चरबी, चापट करबी-सी काटैं।
जगि जोरि जुनब्बै, फहरत फब्बै, सुंडनि गब्बै, फर पाटैं॥१४॥

बिज्जुल-सी चमकैं, घाइन घमकैं, तीखन तमकैं बंदर की।
बंदरी सु खग्गैं, जगमग जग्गैं, लपकत लग्गैं, नहिं बरकी॥
सोहैं सुभ सुरती, घलत न मुरती, रन में फुरती, बीरन कौं।
नीलम तरवारैं, झुकि-झुकि झारैं, तकि तकि मारैं, धीरन कौं॥१५॥

गजकुंभ बिदारैं, सु लहरदारैं, लहरनि धारैं, बिधि-बिधि की।
लखि लालूवारैं, रिपु-गन हारैं, मोल बिचारैं, नव निधि की॥
तहँ खुरासानी, जग की जानी, घलैं कृपानी, चक-चौंधैं।
निब्बाज-हु-खानी, दलनिधिखानी, बिज्जु-समानी, रनकौंधैं॥१६॥

असिवर नादौटैं, घलत न लौटैं, मुंडनि मौटैं, काटि करैं।
बर मानासाहीं, भटनि दुबाहीं, झिलमनि बाहीं, नहीं झरैं॥
सुभ समर सिरोही, जगमग जोही, निकसत सोही, नागिन-सी।
कर-करी सुकत्ती, तीखनतत्ती, हनि रिपु छत्ती, नहिं बिनसी॥१७॥

गज्जत गज दुरदा, सहित वगुरदा, गालिब गुरदा, देखि परे।
तुरकन के तेगा, तोरन तेगा, सकल सुबेगा, रुधिर-भरे॥
जगजगी जिहाजी, मंजुल माजी, सरंन साजी, सोभि रहीं।
दिपती दरियाई, दोनौं घाई, भटनि चलाई, अति उमहीं॥१८॥

तहँ सु अलेमानी, और न सानी, सहित निसानी, घलन लगीं।
सु जुनेद-हु-खानी, पूरति पानी, दिपति दिखानी, जगा-जगी॥
दोनौं दिसि निसरी, लखत न बिसरी, मंजुल मिसरी, तरवारैं।
तन तोरन रुपती, गालिब गुपती, झक-झक झुपती, झुकि झारैं॥१९॥

हेरी जु हलब्बी, सुंडनि गब्बी, सीस खलब्बी-सी चमकैं।
तहँ करत झपट्टे, वीर सुभट्टे, चहुँदिसि पट्टे, घम-घमकैं॥
घालत अति चाँड़े, गहि-गहि गाँड़े, रिपु-सिर भाँड़े-से जु हरैं।
करि-करि चित चोपैं, रन पग रोपैं, धरि-धरि धोपैं, धूम करैं॥२०॥

जिन ने अति भारे, बखतर फारे, दलनि दुधारे, बहु निकसे।
तहँ सु बरदमानी, खड़ग पिहानी, हर बरदानी, हेरि हँसे॥
चरबी जिन चावी, दबहिं न दावी, दिपति दुतावी, देखि परैं।
मुरि मुरत कहूँ ना, उत्तम ऊना, सब तैं दूना, काट करैं॥२१॥

छीलत जे काँचैं, रन में नाचैं, सुदम तमाचैं, ओप धरैं।
रंजित रन-भूमी, सु खड़ग रूमी, रिपु-सिर तूमी-सी कतरैं॥
असिवर अँगरेजैं, घलि-घलि तेजैं, अरि-गन भेजैं, सुरपुर को।
लखि फरुंकसाही, वीरन बाहीं, खल भजि जाहीं, दुर-दुर को॥२२॥

रिपु-झलनि झकोरैं, मुख नहिं मोरैं, बखतर तोरैं, तकब्बरी।
इक-एकनि मारैं, धरि ललकारैं, गहि तरवारैं, अकब्बरी॥
इमि बहु तरवारैं, काढ़ि अपारैं, सुचित बिचारैं, नहिं आवैं।
तिनके बहु खनके, झिलमनि झनके, ठनकर ठनके, तन तावैं॥२३॥

बकचकैं चलावैं, दुहुँदिसि धावैं, हयनि कुदावैं, फूल-भरे।
गजदंत उपाटैं, हौदा काटैं, बाँधि सपाटैं, अति उभरे॥
हत्थिन सों हत्थी, मत्था-मत्थी, रारि अकत्थी, करन लगे।
जंजीरनि घालैं, सुंड उछालैं, बाँधत फालैं, फर उमगे॥२४॥

गहि-गहि हय झटकैं, दिशि-दिशि भटकैं, भू पर पटकैं, नहिं लटकैं।
पायनि सों पीसैं अरिगन मीसैं, जम से दीसैं, नहिं भटकैं॥
प्रति गजनि उठेलैं, दंदनि ठेलैं, ह्वै भट-भेलैं, जोर करैं।
जुत्थन सों जूटैं, नेकु न हूटैं, फिरि-फिरि छूटैं, फेरि लरैं॥२५॥

करि-करि इमि टक्कर,हटत न थक्कर, तन तकि तक्कर, तोरत हैं।
मारे रन गंडनि, भाले झडनि, तऊ न सुंडनि, मोरत हैं॥
इमि कुंजर लपटैं, दुहुँ दल दपटैं, झुकि-झुकि झपटैं, झूमत हैं।
अरि-पटल पटा-से, फारत खासे, सु घन-घटा से, घूमत हैं॥२६

तहँ अर्जुन वंका, करि-करि हंका, दुरद निसंका, हूलत हैं।
बैठौ जु किलाएँ, मुच्छनि ताएँ, रन-छवि छाएँ, फूलत हैं॥
झारत हथियारन, मारत बारन, तन तरवारन, लगत हँसैं।
पैरत भालन कौं, सर-जालन कौं, असि घालन कौं,धमकि धँसैं॥२७

तहँ मची हकाहक, भई जकाजक, छिनक थकाथक, होइ रही।
तब नृप अनूप गिरि,सुभट सिंधु तिरि,अर्जुन सों भिरि,खड़ग गही॥
हय दावि कन्हैया, सुमिरि कन्हैया, सु गज-कन्हैया पर पहुँचौ।
झारत तर वारैं, तकि-तकि मारैं, प्रवल पमारैं, गहि कहुँचौ॥२८

पटक्यौ गज पर तें, उमड़ि उभर तें,अरि-सिर धर तें,काटि लियौ।
रिपु-रुंड धरा को, अरपत ताको, हरहि हरा को, मुंड दियौ॥
लहि अर्जुन-मत्था, गिरजा-नत्था, अमित अकत्था, नचत भयौ।
डम डमरु बजावै, विरदनि गावै, भूत नचावै, छविन छयौ॥२६

किल किलकत चंडी, लहि निज खंडी, उमड़ि उमंडी हरषति है।
सँग लै वैतालनि, दै-दै तालनि, मज्जा-जालनि, करषति है॥
जुग्गिननि जमातीं, हिय हरषातीं, खद-खद खातीं, माँसन कौं।
रुधिरन सौं भरि-भरि,खप्पर धरि-धरि,नचतींकरि-करि हासन कौं॥

बज्जत जय-डक्का, गज्जत बक्का, भज्जत लक्का लौं, अरि गे।
मन-मानि अतङ्का, करि सत सङ्का, सिंधु सपङ्का, तरि-तरि गे॥
नृप करि इमि रारनि, लरि तरवारनि, मारि पमारनि, फते लई।
लूटे बहु हय-गय, देत खलनि भय, जग में जय-जय, सुधुनि भई॥३

(छप्पय)

जय जय जय धुनि, धन्य-धन्य गज्जियं छिति छज्जिय।
फहरत सुजस-निसान, सान जय-दुन्दुभि बज्जिय।
सोभहिं सुभट सपूत, खाइ तन घाइ अतुल्ले।
विमल बसन्तहि पाइ, मनहु कल किंसुक फुल्ले।
तहँ 'पद्माकर' कवि बरन इमि, रन-उमङ्ग सफजङ्ग किय।
नृप-मनि अनूप गिरि भूप जहँ, सुख-समूह सु फतूह लिय ॥३२॥

(हरिगीतिका)

सुलुभ सुख समूह फतूह लिय, हिय मंजु मोदन सों भरै।
काली कपाली निस-दिना, नित नृपति की रच्छा करै।
पृथु-रिरित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की॥
बर बरनिये बिरुदावली, हिम्मत बहादुर भूप की ॥३३॥

———

६

विविध वस्तु-वर्णन

प्रतापसिंह

कामद कला-निधान कोविद कविंदन को,
काटत कलेस किल कल्पतरु-कैसे हैं।
कहै 'पदमाकर' भगीरथ-से भागवान,
भानुकुल-भूषन भये यों राम जैसे हैं॥
मानिनी-मनोहरन महत मजेजवंत,
माधव—नरिंद-तनै तेजवंत तैसे हैं।
कूरम कुलीन मान सिंहावत महाराज,
साहिब सवाई श्री प्रतापसिंह ऐसे हैं॥१॥

देत वढ़ा सीस तुम, देत हैं असीस हम,
तुम जसु लेत, हम वसु लेत भाये हैं।
कहै 'पदमाकर' तुम सुबरन बरषत,
हम हूँ सुहाये सुवरन वरषाये हैं॥
राजन के राजा महाराजा श्री प्रतापसिंह,
तुम सकवंध हम छंदवंध छाये हैं।
जानियो न ऐसी कि ये बिगर बुलाये आये,
गुन तौ तिहारे मोहिं वरबस लाये हैं॥२॥

सूरत के साह कहै, कोऊ नरनाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के॥
देखि असबाब मेरो भरमैं नरिंद सवै,
तिन सौं कहे मैं बैन सत्य सिरताज के।
नाम 'पद्माकर' डराउ मति कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥३॥

झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते-राते जरद जरूर माँगि लाइवो।
कहै 'पद्माकर' सो हीरा लाल मोतिन के,
पन्नन के भाँति-भाँति गहने जड़ाइवो॥
भूपति प्रतापसिंह रावरे बिलोकि कवि,
देवता विचारैं भूभिलोकै कब जाइवो।
इन्द्र-पद छोड़ि इन्द्र चाहत कविंद्र-पद,
चाहे इन्दरानी कबिरानी कहवाइवो॥४॥

कीरति-कतार करतार कामधेनुन की,
सूरति-विचार घनसार को घरसिवो।
कहै 'पदमाकर' प्रतापसिंह महाराज,
बोलिवो तिहारो सुधासिंधु को बरसिवो॥
सहज सुभाइ मुसकाइवो मनोहर है,
जगत-प्रसिद्ध आठो सिद्धि को सरसिवो।
दिल सों दया सों देखिवोई देव-दरसन,
रीझिवो रसायन है पारस परसिवो॥५॥

(कवित्त)

गाँउ गज-वाजि दै दराज कविराजन,
पटैल को पराभव, फतूहन फलै गए।
कहै 'पदमाकर' अभै दै राज-रय्यत को,
मन्त्रिन को मंत्र दै न काहू सों छले गए।।
साहिब सवाई सुख-संपति समाज-साज,
जगत-नरिंदै निज नंदै दै भले गए।
वास बयकुण्ठ करिवे कों श्री प्रताप,
पाकसासन के आसन पै पाँव दै चले गए ॥६॥

लवा-वर्णन

निपट निखोट करैं चोटि पर चोट लोटि,
जानत न जुद्ध जुरैं उद्धत अवाई के।
कहै 'पदमाकर' त्यों वलकै विलंद वली,
ललकै लवीन पर लक्का ज्यों लुनाई के॥
चंचल चुटीले चिक्क चाक चटकीले, सक्ति
संगरत जैन लोप लंगर लराई के।
वज्र के ववा हैं कै छवा हैं छवि ही के, रन—
रोस के रवा हैं कै लवा हैं श्री सवाई के ॥७॥

तीतर-वर्णन

पक्के पींजरान ही तें खोलत खुले परत,
वोलत सो वोल विजै-दुन्दुभी-से दै रहैं।
कहै 'पदमाकर' चभोटैं करि चोंचन की,
चूकत न चोट चटकीले अंग वै रहैं॥

तेरे तुङ्ग तीतुर तयार नृप कूरम के,
लै-लै फर्र-फर्र कै फतूहन फबै रहैं।
वासा को गनैं न कछु जंग जुरैं जुरैन सों,
बाजी-बाजी बेर बाजी बाज हू सों लै रहैं ॥८॥

नेत्र-वर्णन

सियर-सुपूतरी कृपान-कल-कज्जल त्यों,
दल वरुनीन के छबीले छैल छाजे हैं।
कहै 'पदमाकर' न जानी जाति कौन पै घौं,
भौंहन के धनुष चितौन-सर साजे हैं॥
घेरदार घूँघट-घटा के छाँहगीर तरैं,
मदन-बजीर के लिये ही मंजु माँजें हैं।
वखत बुलंद मुखचन्द के तखत पर,
चारु चख चञ्चल चकत्ता ह्वै बिराजे हैं॥९॥

तिल-वर्णन

कैधों रूप-रासि में सिंगार रस अंकुरित,
संकुरित कैधों तम तड़ित जुन्हाई में।
कहै 'पदमाकर' त्यों किधों काम कारीगर,
नुकता दियो है हेम-फरद सुहाई में॥
कैधौं अरविंद में मलिंद-सुत सोयो आनि,
ऐसो तिल सोहत कपोल की लुनाई में।
कैधौं परयो इंदु में कलिंदि-जल-बिंदु आइ,
गरक गुविंद किधौं गौरी की गोराई में ॥१०॥

हास-वर्णन

गुल गुलकन्द के सुमन्द करि दाखन को,
देखहु दुचन्द कला कन्द की कमाई-सी।
कहै 'पद्माकर' त्यों साहिवी सुधा की सवै,
व्रज-वसुधा में सो कहाँ धौं परी पाई-सी ॥
खारिक खरी को मधु हू की माधुरी को सुभ,
सारद-सिरी को मीसरी को लूटि लाई-सी।
साँवरी सलोनी के सलोने अधरान ही में,
मन्द मुसकान भरी मंजुल मिठाई-सी ॥११॥

होली-वर्णन

(सवैया)

गैल में गाइ कै गारी दई फिरि तारी दई औ दई पिचकारी।
त्यों 'पद्माकर' मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ॥
सौंहैं ववा को करे हौं कहौं यहि फाग को लेहुँगी दाँव विहारी।
का कबहूँ मझि आइ हो ना तुम नन्दकिसोर या खोरि हमारी ॥१२॥

(कवित्त)

फहर गई धौं कवै रङ्ग के फुहारन में,
कैधौं तरावोर भई अतर-अपीच में।
कहै 'पद्माकर' चुभी-सी चार चोवन में,
उलचि गई धौं कहुँ अगर-उलीच में ॥
हाय इन नैनन तें निकरि हमारी लाज,
कित धौं हेरानी हुरिहारन के बीच में।
उलझि गई धौं कहूँ उड़त अबीर रङ्ग,
कचरि गई धौं कहूँ केसरि की कीच में ॥१३॥

हिंडोला-वर्णन

भौंरन को गुंजन विहार बन कुंजन में,
मंजुल मलारन को गावनो लगत है।
कहै 'पदमाकर' गुमान हूँ तें मान हूँ तें,
प्रान हूँ तें प्यारो मनभावनो लगत है॥
मोरन को सोर घन घोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को वृन्द छवि-छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है॥१४॥

फूलन के खम्भा पाट-पटरी सुफूलन की,
फूलन के फँदना फँदे हैं लाल डोरे में।
कहै 'पदमाकर' बितान तने फूलन के,
फूलन की झालर त्यों झूलति झकोरे में॥
फूलि रही फूलन सुफूल फुलवारी तहाँ,
फूलई के फरस फबे हैं कुञ्ज कोरे में।
फूलझरी,फूल-भरी, फूल-जरी फूलन में,
फूलई-सी फूलति सुफूल के हिंडोरे में॥१५॥

बालकृष्ण-वर्णन

(कवित्त)

देखु 'पदमाकर' गोविंद की अमित छबि,
संकर समेत बिधि आनँद सों बाढ़ो है।
झिझकत झूमत मुदित मुसुकात गाढ़,
अंचल को छोर दोऊ हाथन सों आढ़ो है॥

पटकत पाँव होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन तें नीर-कन काढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है ॥१६॥

रामनाम-माहात्म्य

जोग जप जज्ञ कर तीरथ किये को फल,
पाइ चुक्यो पल में त्रितापन को तै चुक्यो।
कहै 'पदमाकर' सु सात हू समुद्र-जुत,
रतन-जटित पृथिवी को दान दै चुक्यो ॥
जाने विन जाने जा ने राम को उचारयो नाम,
सो तो परिनाम हित एते काम कै चुक्यो।
तापन को खंड जमदंड हू को दंड, भेदि,
मारतंड-मंडल अखंड पद लै चुक्यो ॥१७॥

गंगा-वर्णन

कलित कपूर में न कीरति कुमोदिनी में,
कुंद में न कास में कपास में न कंद में।
कहै 'पदमाकर' न हंस में न हास हू में,
हिम में न हेरि हारो हीरन के बूंद में ॥
जेती छबि गंग की तरंगन में ताकियत,
तेती छबि छीर में न छीरधि के छंद में।
चैत में न चैत-चाँदनी हू में चमेलिन में,
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में ॥१८॥

———

कठिन शब्दों के अर्थ

(१) गंगा लहरी

१. हर = महादेव । भेष = उत्तम ।

२. बई = बोई । ती = थी । सुगथ की=पवित्र कीर्ति । जन्हु = एक ऋषि । ऐसी कथा है कि इनकी जंघा में गंगाजी छिप गई थीं । जब भागीरथजी ने प्रार्थना की तब गंगा निकलीं । अतएव गंगाजी को जन्हुजा भी कहते हैं । अरथ = प्रयोजन, मतलब । लहलही = प्रफुल्लित । बहवही = फैल कर चलना ।

३. कूरम = कच्छप । कोल = सूअर । फैल = फैलाव । रजत = चाँदी ।

५. आप = जल । वही = जिसमें मनुष्य के कर्मों का लेखा लिखा जाता है । थिरथाप=स्थिर स्थापना । जकिसे=चकपकाये से ।

६. फरद = लेखा । खत जाना=लिखकर पूरा हो जाना, हिसाब पूरा कर देना ।

७. जोय = स्त्री । जोय = देखकर । कुराही = बुरे मार्ग पर चलने वाला । अंगन = आँगन । अंगन = अंगों को ।

६. निपात = पतन होना, गिरना । तोय = जल ।

१०. अघ = पाप । तारे=उद्धार किया, पार किया । कतारें=पंक्ति ।

११. अन्तरिच्छ = आकाश । झार = ज्वाला । सुचित = निश्चिन्त । सेवते = रहते । अमीलती = अलग होती ।

१२. छहर = छिटकाव । कहर = आफत ।

१३. गति = मोक्ष। भवसूल = सांसारिक कष्ट। पंचभूत = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; इन पाँच तत्वों से बना शरीर। भूतन = भूतनाथ, महादेव। ग्यारह=रुद्र (महादेव) ग्यारह होते हैं। त्रिसूल = त्रिशूल (तीन पीड़ायें), महादेवजी का अस्त्र।

१४. खतिकी = दूर होना। अजगवै = यकायक। दुरमति की = दुर्बुद्धि।

१५. हर = हल। गिरैया=पगहा। बगर=घर। फेरि लै=लौटा ले।

१६. काम करना=ध्यान करना। जाल = समूह। जाग = यज्ञ। अंबर = वस्त्र। दिगम्बर = नंगा। जोरावरी = बलपूर्वक। खिलत = पोशाक।

१७. कूट = शिखर। कालकूट = जहर। असम=जो समान न हो। अनुसरतो = कहता।

१८. सैन = सेना। पाक सासन = इन्द्र। हलकंपनि = भय से।

१९. छिति=क्षिति, पृथ्वी। चारिमुख=ब्रह्मा। पंचमुख=महादेव।

२०. प्रेतनाह = यमराज। गरद = धूल। दाह = जलन। दव = भयंकर।

२१. रास = ढेर। कास = एक प्रकार का पौधा। लदाऊ=लदाव, भराव।

२२. सूच्छ = सूक्ष्म।

२३. वृष = बैल। वृषपति = महादेवजी। चितैबे = देखने के लिए (नजर दौड़ा रहे थे)।

२४. अयान = घमंड। दिगंबर = नंगा।

२५. जह्नु जन = जह्नु ऋषि। राकापति = चन्द्र। सलाका = दंड (मेरुदंड)।

२६. हरे-हरे = धीरे-धीरे । ढरो = द्रवो । ढरे = धारण किया ।
२८. दुचंद = दुगनी । गाज = विद्युत, बिजली । बिलानी = नष्ट । दीपति = चमक । दाहक = जलन । गाह = गाढ़ी ।
२९. सुरापी = शराबी । अमल = राज्य । ठाकुरी = प्रभुत्व । द्विजतापी = ब्राह्मणों को दुःख देने वाले ।
३०. उदोत = उत्थान, उदय । गोत = (गोत्र) समूह ।
३१. हाल = शीघ्र, तुरन्त । लुटिगे = लुट गये । पराउ = पड़ाव, डेरा ।
३२. धौरी = धवल, सफेद । चौरी = चौड़ी । खासी = पूर्ण, ठीक । अटा = ढेर । ढार = ढङ्ग । चिन्ह वारियै = चिन्ह वाली ।
३३. उपराजै = पैदा करती है । तानै = फैलाना । अभंगा = परिपूर्ण । अघ ओघ = पाप पुञ्ज । गराजै = गरजती है ।
३४. गिरवान = (गीर्वाण) देवता । जरब देना = नीचा दिखाना । लगाइ = लेकर । थोक = समूह ।
३६. धुर=श्रेष्ठ, उत्तम । पंखवारे = पंखा झलने वाले । पाकसासन = इन्द्र । तमोल = ताम्बूल, पान ।
३७. आप = जल । अटहर = सिर पर पगड़ी जैसी फेंट मारना । मीच = मृत्यु । हजार सीस वारे = शेषनाग ।
३८. फिराद = पुकार । साख = प्रसिद्ध ।
४१. नै-नै = नमित होकर ।
४२. टरको = चला गया । भराघर = जिसके घर में आवश्यक सब वस्तुएँ रहती हों ।
४३. परतच्छई=प्रत्यत्त ।
४४. भाग = भाग्य, तकदीर । गुमान = घमंड ।
४५. निगम = वेद । ही = हृदय । अच्छन = आँखें । इन्दिरा = लक्ष्मी । भवछंद = सांसारिक झगड़े ।

४६. आवरत = घेरा। ऐन = ठीक। अघ = पाप।

४७. मातसर्य = डाह, ईर्ष्या। छंद = कपट। वारि = जल। तरंगिनी = नदी।

४६. झामी = धोकेबाज। विमान = पुष्पक, इन्द्र के विमान से भाव है।

५०. हुतो=था! गाढ़ = कष्ट, विपत्ति। पास = जाल। संघाती = साथी। दीह = (दीर्घ) भारी।

५१. कल = सुन्दर। विलमैं = देर करना।

५२. हिराने = खो गये। कचरे = दब जाना। करार = कगार, किनारे की ऊँची पृथ्वी।

५३. रौरव = नरक। गैल = गली। वंस बालन = लड़के वालों में।

५५. तिसार = संग्रहणी, रोग विशेष। लखि = देखना। अहि = सर्प।

५६. श्रुति = वेद। सार = तत्व। सुभग = सुन्दर। फल चार = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

(२) प्रबोध-पचासा

१. वित्त काज = कार्य। यांचक = माँगने वाले, प्रार्थी से भाव है। पन्नग = सर्प। त्रिपुरारि = महादेव।

२. चाहि = देखकर। जलजात = कमल। आपनो सो = अपने तुल्य।

५. कितै = कहाँ। जनये = बताया जाना। रूरी = सुन्दर।

६. चौरे = चोर। बीध, बीधि = लग लग कर। जगत-वृन्द = जीवों का समूह।

७. द्यौस = दिवस, दिन। पिपीलिका = चींटी। फील = हस्ति। कंदकला = बरफी, कलाकन्द। छकात = खा-पीकर, अघाते समय।

८. पियूष = अमृत। कामद = मन की इच्छा पूरी करने वाला। कामदुहा = कामधेनु गाय। सिरै = बढ़ कर।

९. परेहु परभात = सुबह होने पर। परात = भागना। नाथ नहना = कार्य करने की ठानना।

१०. वान बल = बाण के द्वारा। वितान = यज्ञ-मण्डप।

११. चतुरानन = चार हैं मुख जिसके अर्थात् ब्रह्मा। तिलाम = गुलाम का गुलाम। चतुरानन = ब्रह्मा। विरंचि = ब्रह्मा। त्रासना = भय।

१३. दाया = दया। मंथर = नीच, दुष्ट। विराध = राक्षस विशेष जिसे राम ने मारा था। कवंध = एक सिर कटा राक्षस जिसे राम ने मारा था। पंथ-पाहन = मार्ग का पत्थर, (अहिल्या)। व्याध = बहेलिया (वाल्मीकि)।

१४. सठिन = दुष्ट। छमा = पृथ्वी। रोरना = लड़ना। ही = थी।

१५. स्यौरी = शबरी नामक भीलनी। गौतमी = अहिल्या। विहद = बढ़कर।

१६. परपंच = खेल। पेखना = कठपुतली का खेल।

१७. पाँच = पंच। ज्यो = जी में। काँचे = उत्साह रहित। सुद = शूद्र। ह्यो = हृदय।

१६. विसासिनी = भरोसा जिसके ऊपर न हो, विश्वासघात करने वाली। विलई = बिल्ली।

२०. ज्यान = घाटा। कहा धौं = न जाने कहाँ तक।

२१. झाझरी = जीर्ण-शीर्ण, पुरानी। अमित=अधिक।
२२. विजन (व्यञ्जन) = भोज्य पदार्थ। हरेई = धीरे से।
२३. फलक फफोला = पानी के बुलबुले का परदा। चोला=खोल। जोला = गाँठ।
२४. धना = ईश्वर-भक्त एक जाट का नाम। सदना = एक कसाई का नाम। इसके विषय में ऐसी किम्वदन्ती है कि माँस को यह सालिग्राम की बटिया से तोला करता था, केवल इतने ही से इसका उद्धार हो गया था।
२५. पच्छिन के = अपनी ओर वालों के। लच्छन = लाखों। पच्छि = गरुड़। सहस सच्छि = इन्द्र। निपच्छी = जिसका पच्छ करने वाला कोई नहीं। गच्छिबो = जाया करते हैं। यच्छिबो = दास जैसा यच्छण (पूजन) करते हैं।
२६. रुजा = कोढ़, रोग विशेष। मंजूसा = सन्दूकड़ी। खारिज = खाली। पखाल = मश्क।
२८. गोकरन = गोकर्ण तीर्थ (मालावार में है)।
२६. कलाय = समूह। मीठो भर कठवति = परिपूर्ण मधुर।
३२. सीकर = पानी की बूंदें। वात = वायु, हवा। पंच पावक = पञ्चाग्नि।
३३. सुदमन = दंड। दाम = माला। अराम = (आराम) बगीचा। धाम = टेक। हिमाम=हम्माम, गर्म पानी का हौज।
३४. सारंगपानि = विष्णु। मुचंड = स्थूल। रसायन = रसीली।
३५. जमाति = मंडली, समूह। जाया = स्त्री। पेखनो = तमाशा।
३६. लाछे = लांछित करना। विप्र = अजामिल से भाव है। लुब्धक = व्याध, वाल्मीकि से तात्पर्य है। ग्राव = पत्थर।

३६. रिच्छ = भालु। बिलंद = भारी। वरन = वर्ण, अत्तर।
४०. कुपातक = भारी पाप। आतस = अग्नि।
४४. सियना है = रामजी से तात्पर्य है। टाँच = सिलाई। डाभ= टाँका। वेट = लिए, वास्ते। फितूर = कमी।
४५. वैस=(वयस)=अवस्था। सी = श्री। हर हार = सर्प।
४७. सामा = सामग्री। आसागठि = इच्छा रखकर।
४८. सेत = सफेद। असेत = काली, बुरी। अंक = लेखा।
४६. गरवी = भारी, महान्। भरम = भ्रम, भूल।
५०. ती = स्त्री। गोती = नातेदार। चपेट = संकट, मुसीवत।
५१. सुकंठ = अच्छी गरदन, सुग्रीव। कवंध = राक्षस विशेष, जिसे राम ने मारा था।

(३) षड् ऋतु-वर्णन

१. केलि = खेल, क्रीड़ा। पिक = कोयल। बीथी = गली। कलित= सुन्दर। किलकंत = किलकता है। पालस = टेसू। पगंत है = पगा है। दिगंत = दिशा।
२. डौर = ढङ्ग। झौंर = गुच्छा।
३. लुञ्ज = टूटे हुए। विसासी = विश्वासघात करने वाले। लरजत = हिलते हैं।
४. लूकै = गर्म हवा। हूकना=पीड़ा से बेचैन। ऊकना=जलाना।
५. छाम = महीना। जलाकैं=गर्म हवा। सीतल सुपाटी=चटाई। गजक = नाश्ता। वाटी = वाटिका।
६. मल्लिका = चमेली। मुहीम = चढ़ाई। दुंद = शोर।
७. लरजना = हिलना। तरजना = घुड़कना। चरजना = भुलावा देना।

८. मवासो = किला, घर । अवासो=घर झरसत=झुलसता है।
९. ताल = सर । छान = छप्पर । छता = छत्र।
११. छाकियतु हैं = तृप्त होना। तरनि – सूर्य । वाकियतु हैं = कहे जाते हैं ।
१२. गिलमैं = गद्दा । गिजा = भोज्य पदार्थ । कसाला=कष्ट ।

(४) रस-वर्णन

१. कीरति किसोरी = राधिका ।
३. झलौ = समूह । मझार=बीच । हेला=खेल । छराछोर= इजारबन्द का छोर। झपकि = शीघ्रता से । मेला = भीड़ । छाह छ्वै = पास आकर ।
४. ही = थी। कतरे = टुकड़े । करिहाँ की = कमर वाली । चोरिन=चुपके से । फेर = जादू ।
७. जोग जोही = देखने योग्य । सों = से, वह । खुसबोही सों= सुगंध से ।
८. आक = (अर्क) वृक्ष विशेष, आख । आँकना=बतलाना । परिरम्भन = आलिंगन । बकिबो = बकना
९. उरुझे = उलझे । रसे हैं = प्रविष्ट हैं । उमहत=प्रसन्न ।
११. पाहुनी=अतिथि, मेहमान स्त्रियाँ । उछाह=उत्साह । उमाह=उमंग । दिगंबर=नंगे (महादेव) ।
१२. धनी=स्वामी । वाहिए=फेंक दीजिये ।
१३. वारि = जल । अच्छ=अक्षयकुमार (रावण के पुत्र का नाम) ।
१४. चित्रकूट=लंका की तीन चोटियाँ (सुबेला, लंका, निकुंभिला) । रुच्छ=रुक्ष (क्रुद्ध) । उचारौं=कहता हूँ। तिच्छ=(तीक्ष्ण), प्रचंड । गंत=गिनता हूँ ।

१५. फलात = उछलते हुए । तमंका = जोश ।
निरच्छ = रच्छा हीन, सहायता रहित ।

१५. अत्र = अस्त्र, हथियार । संगर = युद्ध । फलंका = आकाश ।

१६. ललाई = सुन्दरता । परिघ = हथियार विशेष । रौंदा = प्रत्यञ्चा । न मात = नहीं अँटता ।

१७. चायन = चाव से । वाहनै = सवारी । उवाहने = नंगे पैर ।

१६. वकसि दिये = दान किये । वितुंड = हाथी । षोडस=सोलह प्रकार; दान सोलह प्रकार के होते हैं—भूमि, आसन, जल, वस्त्र, दीप, अन्न, पान, छत्र, सुगन्धि, फूलमाला, फल, शय्या, पादुका, गो, सोना और चाँदी ।

२०. हेम = सोना । गंज गज = हाथियों का समूह । गोइ रही = रखवाली । वितर = बाँटना । वकस = देने वाला ।

२१. आगम = शास्त्र । पुरन्दर = इन्द्र । मन्दर = पर्वत । धान = धान्य ।

२३. झिलिम = कवच । झला = समूह । तेगवाही=तलवार चलाने वाले । गनीम = शत्रु, दुश्मन । सिलाही = सैनिक । इलाही = हे ईश्वर । झिप्यो = ढका ।

२४. जलाक = लू । जाल = समूह । दलेल = सजा । कुल्लि = सम्पूर्ण । कहर = मुसीबत । जिलाह = अत्याचारी । कुन्त = भाला ।

२५. मग्ग = मार्ग । तंतड़ान = बादल गरजने का शब्द ।

२७. अन्त्र = आँत । अरुन = लाल । उरग्गिनी = सर्पिणी । पलपंगत = माँस का ढेर । गिलत = निगलती है । चकचकाई = चकित होकर ।

२६. अजान = अज्ञान, मूर्ख । हौं = मैं । पंचमुख = महादेव ।

३०. माली = समूह । उताली = जल्दी । चाली = छाली ।

३१. वितान = मंडप, चँदोवा । दियो = दीपक । भख = भोज्य पदार्थ ।

(५) हिम्मत बहादुर यशोगान

मंगलाचरण—दंद = द्वन्द, समूह । मघवा = इन्द्र । रच्छस = राक्षस । भारथ-समर = महाभारत का युद्ध । पारथ = अर्जुन । सखय = सखा, मित्र ।

१. अवतंस = भूषण, श्रेष्ठ । गिरिराज-इन्द्र = हिम्मत बहादुर के गुरु का नाम, राजेन्द्र गिरि । नन्दन = प्रसन्न करने वाले ।

३. वाग = (वर्ग) समूह । जग्ग = यज्ञ ।

५. रोसन = उत्साह, रोष । नाका = स्वर्ग । सलाका = सलाई ।

७. अन्नन को मूकैं = अस्त्रों का फेंकना । वंगे = वक्र । उटक्कर = अन्धा धुन्ध । छक्कर = दाव-पेच ।

८. खंजर = हथियार विशेष । सनि = प्रविष्ट होकर, घुस कर । गव्जैं = घुसेड़ देना । नव्जैं = नसें ।

९. रूरे = सुन्दर । हक्का = हुँकार । ढक्का = धक्का ।

१०. ताले = सीने की रक्षा निमित्त धारण किये जाने वाला तवा । आले = मजबूत, दृढ़ । सूटैं = फेरते हैं । हूटना = पीछे हटना ।

११. झिक्का = बड़े जोर का युद्ध । चिलता = लड़ाई के समय पहरने का कवच विशेष । झिलम = कवच विशेष । त्रिलमैं = देरी करता । ढुक्का = घूँसा ।

१२. थरकत = काँपना । टक्के = देखते हुए । तरकत हैं = उछलते हैं । चपटे = भलीभाँति दाव कर । झमक्के = झमझम आवाज करते हुए ।

१३. दुस्ताने = तलवार विशेष । दस्ताने करि = तलवार फेर कर ।

१४. कलमैं करि = काटकर। मगरवी = तलवार विशेष। गव्वै = घुस जाती हैं। फर पाटैं = युद्ध-स्थल को भर देना।

१५. लीलम = तलवार विशेष। खग्ग = तलवार।

१६. समानी = सदृश, तुल्य। कौधैं = चमकना।

१७. मोट = ढेर । दुवाहीं = चलाईं । वाहीं = लगने पर । करकरी = तेज। तत्ती = तप्त, दाहक।

१८. दुरदा = दो दाँत वाले। गालिव = अच्छी काट करने वाले। तुर्की तेगा = तेगा विशेष। दिपती = चमकना।

१९. निसानी = निसान करना, घाव करने से भाव है। पानी = आव, चमक ।

२०. हलब्वी = तलवार विशेष। चौड़े = प्रवल, वलवान। धोप (धूर्वा) = तलवार

२१. द्रुर वरदानी = शीघ्रता के साथ वरदान देने वाले, यहाँ महादेवजी से तात्पर्य है। ऊना = विशेष प्रकार की तलवारें।

२२. सुदव = दमदार। ओप = कान्ति, चमक। तूमी = तुँवड़ी।

२३. खनक झनक = हथियार चलने के समय तरह-तरह के शब्द।

१४. फूल = खुशी। झपाटा = पैतरा। अकत्थी = अकथ्य, न कहने योग्य। फर = युद्ध-क्षेत्र। फाल = वड़े-बड़े डग।

२५. भट भेलैं = आमने सामने, मुकावला होना। न हूटे = पीछे न हटना ।

२६. तक्कर = शक्तिशाली, वलवान्। थक्कर = समूह।

२७. पटल = समूह। पटा = वस्त्र वारन = हाथ।

२८. हकाहक = घोर संग्राम। कन्हैया = घोड़े का नाम है। कन्हैया = भगवान् कृष्ण। कन्हैया = कंघा। कहुँचौं = कलाई।

२६. हरहिं = महादेव जी को। हरा = माला। गिरजा-नत्था =महादेव।

३०. मज्जा = चरबी। खद खद = खाने का शब्द विशेष।

३१. वंका = विकट योद्धा। सत = सौ प्रकार। सपंका = कीचड़ समेत।

३२. निसान = झण्डे। अतुल्ले = अधिक। किंसुक = टेसू। फतूह= विजय।

(६) विविध वस्तु-वर्णन

१. कामद=इच्छा पूर्ण करना। किल=निश्चय। मजेजवंत= स्वभाव वाले। कूरम = कछवाये, जाति विशेष। तनै = पुत्र।

२. सकवंध = धड़ समेत, भारी बलवान। सुवरन=सोना, अच्छा रंग।

३. दराज = बहुत। राव = छोटे राजा। असवाव = साज सामान। भरमैं = धोखा खाते हैं।

४. मतंग = हाथी। ताते = तीव्र। राते = लाल रंग के। पन्ना=रत्न विशेष।

५. घनसार = चन्दन। रसायन = औषधि विशेष जो व्याधि को दूर करती हैं। पारस = पत्थर विशेष जो लोहे को सोना बना देता है।

६. पटेल = गाँव का मुखिया। पराभव = हराकर। फतूह= विजय। जगत = सिंह। नंद = पुत्र को।

७. निखोट = भयानक, भीषण। लवी = मादा लवा। लक्का= कबूतर विशेष जो प्रायः कला खाता है। लुनाई = सुन्दरता। चिक्क = शब्द करने वाले। चाक = घेर लेने में। लोय=

लोग, मनुष्य। लंगर = ढीठ। बवा = बाबा। छवा = पुत्र। रवा = सम्बन्ध रखने वाले। संगर = युद्ध।

८. चभोटैं = चोट। वासा = पक्षि विशेष। जुर्रा = बाज विशेष।

९. सियर = ढाल। चकत्ता = शाहंशाह। बखत बुलंद = भाग्यवान।

१०. संकुरित = सिमट जाना। तम = अँधेरा। तड़ित = बिजली। जुन्हाई = चाँदनी, प्रकाश। हेम फरद = सोने का कागज।

११. गुल = फूल का। दुचन्द = बढ़िया, अच्छी। कला = गुण विशेष। खारिक = छुआरा। खरी = ईख विशेष। सारद-सिरी = दूध निर्मित पदार्थ। दाख = द्राक्षा।

१२. अधिकारी = हठ पूर्वक। खोरिमझ = गली में।

१३. अपीच = सुन्दर, सुहावन। चारु = सुन्दर। चोवा = चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ। अगर = एक सुगन्धित लकड़ी।

१४. ताँगी = बन्द। कखियन = (कक्ष) पास का भाग। तमोल = ताम्बूल, पान।

१५. वितान = मंडप, चँदोवा। कोरा = गोद, बीच।

१६. आढो है = पकड़ रखा है। ठुनकना = मचलना, हठ करना।

१७. तै चुक्यो = नष्ट कर चुका। मारतंड = सूर्य, रवि।

१८. कुमुदिनी = कमल विशेष जो चन्द्र-प्रकाश से रात्रि में खिलता है, श्वेत कमल। चन्दचूड़ = महादेव, रुद्र। छन्द = समूह, घिराव।

मुद्रक—जगदीशप्रसाद एम०ए०, बी०कॉम०, दी ऐज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।
प्रकाशक—रत्न बुक डिपो; परेड, कानपुर।